दृश्य सप्तक

[एकांकी-संग्रह]

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

मद्रास

प्रकाशकीय

सभा का यह नया एकांकी-संग्रह हिन्दी प्रेमी पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें अतीव आनन्द हो रहा है।

यह एकांकी संग्रह सभा की राष्ट्र भाषा विशारद जैसी उच्च परीक्षाओं के उपयोगार्थ तैयार किया गया है। इस में कुल सात एकांकी संकलित हैं। सभा के अनुभवी प्रचारक श्री के. सत्यनारायण जी ने इसका संकलन किया है। एतदर्थ वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्येक की कथावस्तु सामाजिक जीवन के एक न एक पहलू को लेकर है। कला एवं भाषा की दृष्टि से सभी नाटक आकर्षक एवं सुन्दर हैं।

हिन्दी एकांकी का उद्भव और विकास का परिचय प्रस्तावना के रूप में दिया गया है, जो छात्रों के लिए उपयोगी है। जिन लेखकों की रचनाएँ इस में संग्रहीत हैं उनके हम आभारी हैं।

हमें आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि हिन्दी प्रेमी पाठक इस संग्रह का स्वागत कर हमें प्रोत्साहित करेंगे।

—प्रकाशक

विषय-सूची

प्रस्तावना

भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार काव्य के दो रूप हैं—दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। साहित्य-क्षेत्र में इन दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ श्रव्य काव्य कानों द्वारा आनन्द-रस का उद्रेक करता है, वहाँ दृश्य काव्य कानों और आँखों दोनों के द्वारा। अतएव दृश्य काव्य श्रव्य काव्य से बढ़कर है और अधिक प्रभावोत्पादक भी। नाटक दृश्य काव्य के अन्तर्गत है। नाटक "नट्" धातु से बना है। "नट्" धातु का अर्थ है—नृत्य और अभिनय। भरत मुनि के अनुसार नाटक का अभिप्राय है नृत्य, गीत, क्रिया और कविता। और नाटक, साहित्य की अन्यान्य विधाओं में उत्तमोत्तम है, उसकी प्रभावोत्पादकता अचूक है।

हमारे यहाँ दृश्य काव्य के लगभग अट्ठाईस रूप माने गये हैं। उन रूपों में भाण, व्यायोग, प्रहसन, अंक, वीथी आदि ऐसे दृश्य काव्य हैं जिनमें एक ही अंक होता है। इस तरह संस्कृत साहित्य में यद्यपि एकांकी, शताब्दियों से लिखे जाते हैं, फिर भी ये प्राय: श्रव्य या पाठ्य ही रहे न कि दृश्य। दृश्य तो लंबे अर्थात् एक से अधिक अंकवाले नाटक ही हुआ करते थे। अतः वर्तमान युग में प्रचलित एकांकी भारतीय काव्य परंपरा की अपेक्षा पाश्चात्य नाटक परंपरा के अधिक निकट हैं। वास्तव में भारतीय साहित्य को एकांकी उसी तरह पाश्चात्य या अंग्रेजी साहित्य की देन है जिस तरह कहानी या गद्य।

अंग्रेजी साहित्य में भी आधुनिक एकांकी का इतिहास बहुत पुराना नहीं है, मुश्किल से एक शताब्दी का है यद्यपि 15-वीं तथा 17-वीं शताब्दियों के बीच में इटली के अंदर छोटे से प्रहसन लिखे जाते थे और मध्य युगों के इंग्लैंड और अन्य पश्चिमी देशों में आश्चर्यजनक एवं रहस्यमय नाटक कुछ प्रचार में आये। वास्तव में आधुनिक एकांकी का उद्गम W. W. जाकोब के एकांकी—'बंदर का पंजा' में खोजा जा सकता है, जो

असल में पटउन्नायक के रूप में अभिनीत हुआ था। असल में पटउन्नायक या एकांकी नाटक का आविष्कार और अभिनय आज से करीब अस्सी वर्ष पूर्व ऐसे लोगों के मनोरंजनार्थ हुआ जो नाटक-घर में पहले आ बैठते थे। किन्तु इंग्लिस्तान के अभिजात्य लोग अपनी आदत के अनुसार रात को कुछ देर से भोजन करते थे और भोजन के उपरान्त नाटक-घर में देर से पहुंचते थे। ऐसे अभिजात्य और अमीर लोगों के आगमन के पूर्व नाटक का अभिनय करना रंगमंच के मालिक उचित नहीं समझते थे और वे लोग यह भी उचित नहीं समझते थे कि समय पर आ बैठे हुए लोगों के प्रति कोई ध्यान ही न दिया जाए। फलतः समय पर आये हुए दर्शकों के मनोरंजनार्थ मूल नाटक के पहले पटउन्नायक के अभिनय का सूत्रपात हुआ। सन् 1903 में W. W. जाकोब के "बंदर का पंजा" एकांकी का, पटउन्नायक के रूप में, अभिनय कराया गया, तो दर्शक लोग उससे इतने प्रभावित हुए कि वे जिस मूल नाटक को देखने आये थे, उसे देखे बिना ही नाटक घर से बाहर हो गये। बस एकांकी की रचना और अभिनय का प्रचलन हो गया।

आधुनिक बडा नाटक और एकांकी नाटक: प्रेमचन्द के शब्दों में कहानी एक ही गमले में सजा-संवारा एक ही फूल का पौधा है और उपन्यास पेड-पौधों और लताओं से भरा उद्यान है। प्रेमचन्द का यह कथन आधुनिक एकांकी और बडे नाटक के संदर्भ में भी बिलकुल ठीक उतरता है। एकांकी यदि दस मिनट से लेकर ज़्यादा से ज़्यादा एक घंटे के अंदर समाप्त होता है, तो आधुनिक बडे नाटक की अवधि डेढ़ घंटे से लेकर तीन घंटे तक होती है। एकांकी में मानव जीवन का कोई एक पहलू ही दर्शाया जाता है। एकांकी में बडे नाटक की तुलना में पात्र बहुत ही सीमित होते हैं, जिससे कि प्रधान पात्र का आधिपत्य रंगमंच पर जमा रहे। एकांकी के संभाषणों में संक्षिप्तता और प्रभावोत्पादकता बडी कुशलता के साथ बरती जाती है। परिस्थिति का विकास, उसकी

उलझन, संघर्ष को चरम सीमा तक पहुंचाना आदि बातें बडे नाटक की तुलना में, एकांकी के अंदर बिलकुल भिन्न और विशष्टि शैली में दर्शायी जाती है। "विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भांति खिलकर पुष्प की भांति विकसित हो उठती है। उसमें लता की भांति फैलने की विशृंखलता नहीं होती"—डा० रामकुमार वर्मा। बडे नाटक में जिस प्रकार चरित्र का क्रमिक विकास दर्शाया जाता है उस प्रकार न दर्शाकर एकांकी में तडित-तडक की भांति किसी एक शव्द अथवा कार्य के द्वारा चरित्र उद्दीप्त किया जाता है।

प्राचीन और अर्वाचीन एकांकी: इन दोनों में पहला भेद यह है कि प्राचीन एकांकी की तुलना में अर्वाचीन एकांकी में निर्देश बडे लंबे और स्पष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त निम्नांकित भेद द्रष्टव्य हैं:

1. अर्वाचीन एकांकी में प्राचीन एकांकी की भांति नान्दी, मंगलाचरण, प्रस्तावना, सूत्रधार, नट-नटी आदि बातें नहीं होती हैं।

2. अर्वाचीन एकांकी नायक-नायिका, कथानक, रस आदि बन्धनों से बिलकुल मुक्त है।

3 प्राचीन एकांकी की अपेक्षा अर्वाचीन एकांकी जीवन के अधिक समीप है।

एकांकी और कहानी: यद्यपि एकांकी का क्षेत्र कहानी का सा सधा हुआ है तथापि दोनों बिलकुल अभिन्न नहीं हैं। कहानी का उद्देश्य यदि पाठक का मनोरंजन करना है तो एकांकी का प्रधानत: दर्शक का मनोरंजन करना है। एकांकी में घटना जितनी प्रधानता रखती है उतनी कहानी में नहीं। एकांकी का आधार संवाद या संभाषण है और एकांकीकार अपने निजी रूप में एकांकी में नहीं दीख सकता। अत: वह अपना कथ्य पात्रों के संवाद और अभिनय के द्वारा ही व्यक्त कर सकता है। किन्तु कहानीकार स्वतंत्र है। वह अपने निजी रूप में भी कहानी में अपना कथ्य प्रस्तुत कर सकता है।

एकांकी और संभाषण : संभाषण एकांकी का दूसरा नाम नहीं है। किन्तु अच्छे और चुस्त संभाषण या संवाद तब एकांकी बन सकते हैं जब कि उनकी बदौलत चरित्र-चित्रण, वातावरण की सृष्टि, कथानक की एकाग्रता आदि बातें संभव होती हैं जिन बातों के कारण दर्शक भाव विभोर होते हैं।

एकांकी में निम्नांकित महत्वपूर्ण अंगों की पूर्ति बड़ी आवश्यक है :—

(1) रंग संकेत (2) कार्य-गति (3) अभिनय और संवाद (4) वातावरण (5) चरित्र-चित्रण (6) प्रकाश अथवा छाया का उचित नियोजन।

एकांकी के तत्व : एकांकी के तत्व संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

(1) वस्तु-विषय की एकता और एकाग्रता (2) संक्षिप्तता (3) सीमित पात्र-संख्या और चरित्र चित्रण (4) ऐसे पात्रों का बिलकुल बहिष्कार, जो कथानक से सीधा संबंध नहीं रखते। (5) सरल, स्वाभाविक और आकर्षक कथोपकथन।

एकांकी-कला : रचना विधान की दृष्टि से एकांकी की शिल्प-विधि का क्रम इस प्रकार होना चाहिए :—

1. आरंभ
2. विकास : इसकी प्राय: निम्नांकित तीन अवस्थाएँ हैं :—
   (1) प्रथम मुख्य घटना या कार्य-व्यापार के द्वारा मूल भाव का संकेत मिले।
   (2) द्वितीय मुख्य घटना या कार्य-व्यापार के द्वारा मूल भाव पर प्रकाश पड़े और कुतूहल का वद्र्धन हो।
   (3) तृतीय मुख्य घटना या कार्य-व्यापार के द्वरा एकांकी की संवेदना चरमोत्कर्ष पर पहुँचे और उसके भावों में अतिशय तीव्रता आवे।

चरम सीमा और अन्त : यह एकांकी शिल्प विधान में मुख्य है। इस सोपान में एकांकी का अभिप्राय बिलकुल स्पष्ट होना चाहिए। चरम सीमा के बाद एकांकी का समापन होता है। इसके बाद भी यदि किसी भी प्रकार का उपसंहार जोडा जाए, तो एकांकी का स्वरूप नष्ट हो जाएगा और उसकी प्रभविष्णुता घट जाएगी।

संकलनत्रय : संकलनत्रय एकांकी शिल्पविधि का एक विशेष अंग है। संकलनत्रय का अर्थ है – देश, काल और कार्य-व्यापार की इकाई का संकलन (Unity of place, Time and Action) हिन्दी के प्रख्यात एकांकीकार डा० रामकुमार वर्मा संकलनत्रय को एकांकी की आत्मा मानते हैं। किन्तु दूसरे प्रसिद्ध एकांकीकार सेठ गोविन्द दास के विचार में त्रय में से दो को ग्रहण करना काफ़ी है। इसीलिए उन्होंने (1) एक ही काल की घटना (2) एक ही कार्य को एकांकी संविधान में आवश्यक माना है और देश संकलन को छोड़ दिया। आगे चलकर सेठ जी ने काल संकलन को भी अलग किया है और उसके स्थान पर 'उपक्रम' या 'उपसंहार' को स्थान दिया है। जो हो, एकांकी की सफलता के लिए आधुनिक कहानी की भांति संकलनत्रय अर्थात् समय स्थान और कार्य गति का गुंफन परमावश्यक है।

एकांकी के प्रकार : आज के एकांकी के प्रधानतः तीन प्रकार हैं—(1) दृश्य या रंग एकांकी (2) भाव-नाट्य या नीति-नाट्य (3) रेडियो एकांकी।

1. **दृश्य या रंग एकांकी :** इसके फिर पांच भेद हो सकते हैं:—

(1) **कथानक या घटना प्रधान एकांकी :** इस प्रकार के एकांकी में एकांकीकार का लक्ष्य प्रधानतः किसी कथा या घटना पर प्रकाश डालना होता है। ऐसे नाटकों में चरित्र-चित्रण बिलकुल नहीं होता हो, ऐसी बात नहीं है। चरित्र

का चित्रण होते हुए भी घटना या कथानक का प्राधान्य बना रहता है ।

(2) **चरित्र-प्रधान एकांकी :** इस प्रकार के एकांकियों में एकांकीकार का ध्येय प्रमुखतः पात्र के चरित्र को उद्दीप्त करना होता है। चरित्र प्रधान एकांकियों में पात्रों के भावों का अन्तर्द्वन्द्व भली भांति दिखाया जाता है अर्थात् किसी न किसी प्रकार का संघर्ष दर्शाया जाता है।

(3) **समस्या-प्रधान एकांकी :** इस प्रकार के एकांकियों में कोई न कोई समस्या उठाई जाती है, और उस समस्या का समाधान भी ध्वनित किया जाता है ।

(4) **ऐतिहासिक एकांकी :** इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों का आधार लेकर इस प्रकार के एकांकी लिखे जाते हैं जिनमें उन व्यक्तियों के चरित्र की सबलता या दुर्बलता दर्शायी जाती है।

(5) **व्यंग्यात्मक या हास्यप्रधान एकांकी :** सामाजिक एकांकी इसी प्रकार के अन्तर्गत आते हैं। इनमें एक विशेष प्रकार का व्यंग्य भरा रहता है। समाज, राष्ट्र, परिस्थिति आदि में से किसी के प्रति व्यंग्य हो सकता है।

2. **भाव-नाट्य अथवा गीति-नाट्य :** इस प्रकार के एकांकियों में कथोपकथन काव्यमय होता है। ऐसे एकांकी अधिकतर अभिनय के दृष्टिकोण से नहीं लिखे जाते हैं। ऐसे नाटक भी रंगमंच पर सफल हो सकते हैं यदि उनमें आवश्यकतानुसार बीच बीच में गद्यमय संभाषणों का समावेश हो।

3. **रेडियो एकांकी :** इस प्रकार के एकांकियों के दो रूप हैं— (1) ध्वनि एकांकी (2) रेडियो रूपक या फीचर (Feature) ध्वनि-

एकांकी करीब दृश्य एकांकी के बराबर ही है। अन्तर इतना ही है कि ध्वनि-एकांकी का माध्यम यदि रेडियो स्टेशन का माइक्राफ़ोन है, तो दृश्य एकांकी का, रंगमंच। ध्वनि एकांकी में भाव-भंगिमा के स्थान पर स्वर-भेद को महत्ता प्राप्त है।

रेडियो रूपक में नाटकीयता कम और वर्णन अधिक होता है। उद्घोषक (Narrator) बार-बार आकर श्रोताओं को कहानी की वे बातें सुनाता है जो संभाषण द्वारा व्यक्त नहीं हो सकीं।

हिन्दी एकांकी का उद्भव और विकास : यों तो हरिश्चन्द्र-युग में एकांकी का उद्भव पाया जाता है; किन्तु अर्वाचीन एकांकी का प्रारंभ सन् 1930 के बाद मानना ही ज्यादा युक्तिसंगत है। भारतेन्दु युग में कुछ अनूदित एवं मौलिक एकांकियों की रचना हुई। भारतेन्दु ने स्वयं बंगला से 'भारत माता' का अनुवाद 'भारत जननी' नाम से प्रस्तुत किया और 'भारत-दुर्दशा', 'विषस्य विषमौषधम्', 'नील देवी' आदि मौलिक एकांकी भी लिखे। उसी युग में राधाचरण गोस्वामी, किशोरी लाल गोस्वामी, लाला श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र आदि साहित्य-रसिकों ने इस दिशा में अपना-अपना योगदान दिया। इनके नाटकों का बहिरंग यद्यपि एकांकी का भले ही रहा है, फिर भी अंतरंग एकांकी का बिलकुल नहीं है, क्योंकि इस युग के सभी एकांकी नाटकों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा यथार्थ के पुट का नितान्त अभाव है। समाज-सुधार-संबन्धी छोटे-छोटे विषयों को प्रहसन के रूप में व्यक्त करने का प्रयास किया जाता था। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह आदि इस युग के एकांकी के विषय थे।

श्री रामनाथ 'सुमन' के अनुसार आधुनिक हिन्दी का प्रथम एकांकी जयशंकर प्रसाद का 'एक घूंट' है। किन्तु "एक घूंट" की आधुनिकता निर्विवाद नहीं है। जयशंकर प्रसाद के नाटक स्वभाव से काव्य के अधिक निकट है। यही गुण "एक घूंट" में भी उभरा है। दूसरे, इस एकांकी में

कथात्मक आवेग, कौतूहल का उतार-चढ़ाव, विस्मयात्मक चरम सीमा आदि आधुनिक एकांकी की विशिष्टताएँ, नहीं पायी जाती हैं। इसके अलावा 'एक घूंट' में व्यक्त परिहास उस स्तर का नहीं है बल्कि बिलकुल भोंडा है। हाँ, हरिश्चन्द्र-युगीन एकांकियों की तुलना में प्रसाद युग के एकांकी कुछ हद तक आधुनिक हैं। इस युग के एकांकी पश्चिमी एकांकी कला से परोक्ष रूप से प्रभावित हुए अर्थात् बंगला के द्विजेन्द्र लाल राय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि के मौलिक या अनूदित एकांकियों से प्रभावित हुए। प्रसाद के 'एक घूंट' आदि एकांकियों के रचनाकाल तक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के डाक-घर, राजा-रानी, चित्रांगदा, कर्ण-कुंती आदि नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हो चुका था। संस्कृत के विशेष अध्येता होने के कारण प्रसाद ने अपने नाटकों में बंगला के माध्यम से प्राप्त पश्चिमी नाट्यकला के साथ संस्कृत नाट्य-शिल्प विधि को जोड़ दिया। फलतः उनके बड़े और एकांकी नाटकों में आधुनिकता के पुट का आभास मात्र है। हाँ, यह तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि प्रसाद का 'एक घूंट' प्रचीन और अर्वाचीन एकांकी नाटक के बीच की कड़ी है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के 'इन्द्रधनुष', 'चार बेचारे' नामक एकांकी-संग्रह भी इसी युग में निकले।

आधुनिक एकांकी का उद्‌गम सन् 1935 में माना जा सकता है जब कि भुवनेश्वर प्रसाद का 'कारवां' नामक एकांकी संग्रह प्रकाशित हुआ। इस संग्रह के एकांकियों पर पश्चमी कला तथा विचार धारा की छाप बिलकुल स्पष्ट है। भुवनेश्वर ने स्वयं स्वीकार किया है "......शॉ की छाया अधिक मुखर हो गई है। मैं इसे निर्विकार स्वीकार करता हूँ।" इस प्रकार नाटककार भुवनेश्वर ने हिन्दी जगत के समक्ष नई समस्याओं को ही नहीं रखा बल्कि नई कला को भी।

डा० रामकुमार वर्मा ने संभवतः हिन्दी में सबसे अधिक एकांकी लिखे। पश्चिम की समस्त नाटकीय शिल्प-विधि को भारतीय पद्धति में

परिवर्तित करनेवाले नाटककारों में डा० रामकुमार वर्मा अग्रगण्य हैं। सन् 1935 से 40 तक एकांकी द्रुतगति से हिन्दी में अपना अस्तित्व जमाने लगा। इस दिशा में 'हंस' मासिक पत्रिका के द्वारा भी काफी प्रोत्साहन मिला। उपेन्द्रनाथ 'अश्क', सेठ गोविन्द दास, उदय शंकर भट्ट जैसे प्रतिभावान एकांकीकार अवतरित हुए।

सन् 1946 या 47 के बाद एकांकी का फिर नया मोड़ आया। एकांकी की कला ही नहीं निखर गयी बल्कि उसमें विभिन्नता भी आ गयी। मानव के अन्यान्य क्षेत्रों का संघर्षमय जीवन एकांकियों में प्रतिबिम्बित होने लगा और मनोवैज्ञानिक तथा अन्तर्द्वन्द्वात्मक रंग एकांकी बड़ी सफलता के साथ निकलने लगे। सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एकांकियों के अलावा ध्वनि-नाटक, छाया-नाटक, नृत्य नाटक, गीति-नाटक आदि अनेक प्रकार के रंग नाटक निकलने लगे। आज के रंग एकांकीकारों में उपेन्द्रनाथ 'अश्क', जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, गणेश प्रसाद द्विवेदी, लक्ष्मीनारायण लाल आदि के नाम विशेष आदर के साथ लिए जाते हैं। लक्ष्मीनारायण मिश्र, सुदर्शन, हरिकृष्ण प्रेमी, भगवतीचरण वर्मा जैसे पिछले खेवे के नाटककारों का योगदान भी इस दिशा में कुछ कम नहीं है।

आज का हिन्दी एकांकी बडी क्षिप्र गति से अपना विकास कर रहा है। आज के हिन्दी एकांकीकारों में धर्मवीर भारती, भारत भूषण अग्रवाल, मोहन राकेश, हरिश्चन्द्र खन्ना, कर्तारसिंह दुग्गल आदि विशेष रूप से उल्लखेनीय हैं। आजकल कई नई प्रतिभाएँ हिन्दी एकांकी साहित्य को सुसज्जित करने में लगी हुई हैं। एकांकी शिल्प-विधि में नये नये मोड़ उद्भासित हो रहे हैं। नयी नयी उद्भावनाएँ पल्लवित हो रही हैं और शैलीगत मौलिक बल्कि मनोरम निखार प्रस्फुटित होता दीखता है।

हिन्दी एकांकी का इतिहास मुश्किल से साढ़े तीन दशकों का है। किन्तु इतनी कम अवधि में उसने अपनी जो प्रगति की है, उसे दृष्टि में

रखकर यह आशा करना असंगत नहीं है कि वह दिन बहुत दूर नहीं है जब कि हिन्दी में, अंग्रेजी के "Riders to the sea" की टक्कर का एकांकी प्रकाशित होगा। डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है—'अभी तो इस के स्वरूप में अपनी ऐसी मौलिकता और गहनता है कि जिसके सामने बंगला, मराठी, गुजराती आदि एकांकी साहित्य बिलकुल और स्तर के लगने लगे हैं। हम बडी सफलता से अपने एकांकी साहित्य को भारतीय एकांकी साहित्य का प्रतिनिधि स्वरूप कह सकते हैं। यह वस्तु-सत्य हिन्दी एकांकी साहित्य के अभिनव स्वरूप की प्रेरणा और उपलब्धि का आधार लिए हुए हैं।

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' हिन्दी के प्रतिष्ठित नाटककार हैं। आप अच्छे कवि भी हैं। आपके नाटकों पर राष्ट्रीय आन्दोलन की गहरी छाप है। राष्ट्र-प्रेम हिन्दू-मुस्लिम-एकता हरिजन-आन्दोलन आदि पर आपने बहुत लिखा है। आपके नाटकों में आपका भावुक कवि-हृदय छलकता दिखाई देता है। आपके सभी नाटक रंग नाटक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। 'बादलों के पार' आपका एकांकी-संग्रह हैं।

नृत्य, संगीत आदि कलाओं के अभ्यासी अनादर के पात्र नहीं हैं। किन्तु आज भी ऐसे कलाकारों का जैसा आदर-सम्मान होना चाहिए वैसा नहीं होता है। इसका प्रधान कारण है कि हिन्दू समाज के अंतर्गत उद्योग-धंधों के अनुसार लोगों की जाति कुल आदि निश्चित हैं। राजपूत युवती रूपमती जब स्वभावत: नृत्य और संगीत का अभ्यास करने लगी, तो वह एक प्रकार से जातिच्युत हो गयी। संभ्रांत राजपूत घराने में उसका प्रवेश निषिद्ध-सा हो गया। फलत: ललित लवंगी, रूप-शिखा रूपमती को मालवा के सुलतान, परधर्मावलंबी बाजबहादुर की रखेल बनना

पड़ा । रूपमती का, बाजबहादुर के अन्त:पुर का प्रवेश केवल प्रतिशोध की भावना से प्रेरित हुआ हो, ऐसी बात नहीं है । यदि प्रतिशोध की भावना ही रही हो, तो प्रतिशोध बाजबहादुर के प्रति नहीं बल्कि हिन्दू समाज के प्रति होना चाहिए । इस संदर्भ में और एक सत्य भी उजागर होता है । जो पुरुष बहुत सी स्त्रियों से मेल-मिलाप करता है, उसके प्रति दूसरे प्रकार की कुछ स्त्रियों में भी एक प्रकार का कुतूहल उभरता है कि आखिर उस व्यक्ति में ऐसी कौन-सी विशेषता है जिससे कि बहुत-सी स्त्रियाँ उसके प्रति आकर्षित होती हैं । ऐसे ही कुतूहल से प्रताडित होकर जगन्मोहिनी रूपमती स्वेच्छा से, सुलतान की ओर से ज़ोर-ज़बरदस्ती के न होते हुए, लम्पट बाजबहादुर के पास पहुँच गयीं और उसके लिए 'बेगम' बन गयी, यद्यपि यह बात रूपमती स्वीकारती नहीं दीखती । जो हो, रूपमती सती साध्वी वीर राजपूतानी थी ।

श्री उद्यशंकर भट्ट

स्वर्गीय उदयशंकर भट्ट की नाटक-रचना का प्रारंभ प्रसाद युग में ही हुआ था । आपके प्रारंभिक नाटकों पर प्रसाद की शैली का गहरा प्रभाव दीखता है । आपके नाटकों का विस्तार पौराणिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक तथा राजनैतिक क्षेत्र तक फैला हुआ है । 'आदिम युग और अन्य नाटक' विश्वामित्र और दो भाव नाट्य', 'सात प्रहसन', 'पर्दे के पीछे', 'समस्या का अन्त' आदि आपके एकांकी संग्रह हैं ।

भट्टजी ने अपने एकांकियों में जीवन की विचित्रता एवं विलक्षणता के साथ-साथ अनेक समस्याओं को भी चित्रित किया है । डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है—"भट्टजी के एकांकियों में मनोभाव सरलता से स्पष्ट हो जाते हैं । पात्रों के अनुरूप भाषा की सृष्टि में तो वे सिद्धहस्त हैं । घटनाओं में कौतूहल चाहे न हो, किन्तु स्वाभाविकता के साथ जीवन के चित्रों को स्पष्ट करने में भट्टजी ने विशेष सफलता प्राप्त की है ।"

'बीमार का इलाज' का आधार एक अति साधारण घटना है। इस साधारण-सी घटना को—विनोद की बीमारी को लेकर भट्टजी ने सहज स्वाभाविक शैली में एक परिवार के विभिन्न व्यक्तियों तथा उनकी शिक्षा एवं संस्कारों की व्यंग्यात्मक झांकी प्रस्तुत की है जो अत्यन्त मनोहर ही नहीं बल्कि यथार्थ भी है। घटना की अतिरंजता उसकी यथार्थता की वृद्धि ही करती है न कि कम। इस नाटक में व्यक्त व्यंग्य "Too many cooks spoil the broth" वाली लोकोक्ति को बिलकुल चरितार्थ करती है। डाक्टर का अंतिम वाक्य—'मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम होते हैं' लगता है, हमारे ही हृदय से निकला है। इस तरह यह प्रहसन सोद्देश्य बन जाता है।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' हिन्दी के जाने-माने लेखक हैं। आप बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। आप एक साथ चोटी के कहानी लेखक, नाटककार और उपन्यासकार हैं। आपकी नाट्य-कला एक विलक्षण अपनापन लिये अग्रसर होती है। श्री अश्क जी सन् 37 से लेकर अब तक नाट्य कला संवारने में लगातार लगे हुए हैं। अब तक आपके दर्जनों एकांकी प्रकाशित हुए, जो सभी दृष्टियों से उच्च कोटि के हैं, अभिनेय हैं और रमणीय हैं।

'अश्क' जी के एकांकियों की विशेषता यह है कि उनके कथानक दैनिक जीवन से चयन किये जाते हैं और उनके पात्र भी यथार्थ जीवन से उभरकर अत्यन्त स्वाभाविक लगते हैं। यही कारण है कि साधारण-सी साधारण घटना भी आपकी मंजी हुई कला की संगति से अनायास आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक होती है। (1) देवताओं की छाया में (2) तूफ़ान से पहले (3) चरवार (4) पक्का गाना (5) पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ (6) अच्छी गली आदि आदि आपके एकांकी संग्रह हैं।

'सूखी डाली' अश्क जी का श्रेष्ठ एकांकी है। व्यक्ति, परिवार और समाज के व्यापक रूप में परिव्याप्त अर्वाचीन संघर्ष को मनोरम शैली में इस नाटक में चित्रित किया गया है। समूचे नाटक में एक प्रकार का हल्का व्यंग भरा हुआ है। आर्द्रता छाई हुई है और साथ साथ विलक्षण शालीनता है। दादा रूपी वट वृक्ष की छाया में परिवार के भीतर चलनेवाले संघर्ष की चरम अभिव्यक्ति बेला के इन शब्दों में स्पष्ट होती है—'दादाजी, पेड से किसी डाली का टूटकर अलग होना पसंद नहीं करते, पर क्या आप यह चाहेंगे कि पेड़ से लगी-लगी वह डाल सूखकर मुरझा जाए? संक्रांति काल की अव्यवस्था और व्यक्ति-वैचित्र्य की मनोरम झांकी 'सूखी डाली' है।

श्री भगवतीचरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा यद्यपि उपन्यासकार तथा कहानीकार के रूप में अधिक विख्यात हैं तथापि उनकी प्रतिभा ने साहित्य की अन्य विधाओं का भी थोड़ा बहुत सर्जन किया है। हिन्दी साहित्य जगत में आपका प्रवेश कवि के रूप में हुआ। छायावादी प्रभाव में आए; फिर उससे मुक्त हुए, तो यथार्थ लोक में उतरकर कहानी तथा उपन्यास क्षेत्रों में छा गये और यशस्वी हुए। वर्माजी के कीर्ति-स्तंभों में 'चित्रलेखा' एक है जो हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासों में एक है।

यों तो वर्माजी ने एकांकी नाटक ज्यादा नहीं लिखे, किन्तु जो भी लिखे उच्च कोटि के साबित हुए। नाटकों में भी आपने सामाजिक वैषम्य तथा विरोध के आभास के साथ रूढ़ियों के ध्वंसात्मक चित्र बड़ी आकर्षक शैली में प्रस्तुत किये हैं। "सबसे बड़ा आदमी" इस प्रकार का एक सफल एकांकी नाटक है जिसमें व्यंग्यात्मक चित्र एकदम मुखरित हो उठा है। इस नाटक का स्थान रेस्तारों है और 'दुनिया का सबसे बड़ा कौन है?' इस विषय पर बहस के साथ नाटक का प्रारंभ होता है। कोई

कहता है 'नेपोलियन', कोई कहता है 'लेनिन', कोई कहता है 'गांधी', एक व्यक्ति उठकर कहता है—'दुनिया का सबसे बड़ा आदमी मैं हूँ'। जब वह रेस्तरां से बाहर हो गया, तो पता चला कि वह वहाँ के बहस करनेवाले सभी लोगों के पर्स चुराकर चम्पत हो गया है। इसका व्यंग्य हल्का होता तो अवश्य है; किन्तु दर्शकों में उत्सुकता अन्त तक बना रहती है। यही नाटक की बड़ी सफलता है। इसकी भाषा सहज, स्वाभाविक एवं प्रवाहमय है।

श्री लक्ष्मीनारायण लाल

नयी पीढ़ी के एकांकीकारों में डा० लक्ष्मीनारायण लाल का विशिष्ट स्थान है। अभिनेयता आपके नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता है। आपका कहना है—वस्तुत: अपना जीवन, अपने स्पंदनों और अपने राग-विराग तथा सपनों के लिए अपना रंगमंच होना चाहिए, जिसमें हमारी सांस्कृतिक दृष्टि और कलात्मक उपलब्धियाँ हों। आपके एकांकी संग्रह (1) ताजमहल के आँसू (2) पर्वत के पीछे (3) नाटक बहुरंगी।

लड़ना-झगड़ना जीव की घुट्टी में पड़ा है—आदमी के स्वभाव में है। किन्तु आदमी-आदमी का स्वभाव भी अभिन्न नहीं है। स्त्रियाँ और बच्चे जितनी जल्दी तैश में आते हैं जितना ज़्यादा झगड़ते हैं उतनी ही जल्दी फिर पटरी बैठा देते हैं। पुरुष की बात तो नितान्त भिन्न है—गंभीर मितभाषी और दुरदुरानेवाला है। किन्तु बात लग गयी, तो लग गयी। फिर मिलना-जुलना, मेल मिलाप एकदम ठप। इस स्वभाव-भिन्नता का कारण, वैसे तो उनकी शिक्षा में खोजा जा सकता है। पर परंपरा प्राय: शिक्षा पर हावी होती है। अतएव आधुनिक शिक्षा प्राप्त मम्मी और उसका पति प्रोफ़ेसर दोनों अपने पक्षपातों एवं पूर्वाग्रहों से ऊपर उठ नहीं पाते हैं और उनके बच्चे झूठ बोलने और झगड़ा मोल लेने में बड़े तेज़ हैं। झगड़ालू स्त्रियाँ और बच्चे किस तरह अपने दोष

दूसरों पर थोप देते हैं और स्त्रियाँ अपने बच्चों की बुरी आदतों का दोषारोपण अपने पड़ोसियों पर किस तरह करती है, यह मम्मी और ठकुराइन के परिवारों के साहचर्य में कलाकार लेखक ने भली भांति दर्शाया है। मम्मी का पति प्रोफ़ेसर और ठाकुराइन का पति टिकट बाबू दोनों अड़ गये तो अडे रहे। किन्तु मज़ेदार बात यह है कि ये दोनों महाशय जिन अपने लोगों की तरफ़दारी करते एक दूसरे से तन गये, वे लोग तो आपस में कभी घुल गये।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर

श्री जगदीशचन्द्र माथुर आधुनिक हिन्दी के प्रख्यात नाटककार हैं। आप ऐसे कलाकारों में से हैं जो आधुनिक एकांकी के प्रथम उत्थान काल के साथ साहित्य क्षेत्र में आये हुए हैं। आपके नाटकों में आपकी विस्तृत एवं गहन अध्ययनशीलता की सरस झांकी प्राप्त होती है और साथ-साथ पश्चमी नाट्य कला पर आपका विशेष अधिकार भी दृष्टिगोचर होता है। अतएव आपके नाटकों में सोद्दोश्यता तथा सफल अभिनेयता का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है।

आपके नाटक यथार्थ जीवन के चित्रों से ओतप्रोत हैं। आपके पात्र स्वतंत्र तथा विशिष्ट चारित्रिक गुण लिए होते हैं। माथुरजी अपने प्रत्येक नाटक को सोद्देश्य ही नहीं बनाये दीखते वरन् लोगों को किसी न किसी प्रकार शिक्षित करने को भी आतुर प्रतीत होते हैं। किन्तु इसके कारण आपकी कृति की शिल्प-विधि या कला को किसी भी तरह का धक्का नहीं पहुँच पाता। स्वर्गीय गंगाप्रसाद पांडेय ने लिखा है—'वस्तुतः तंत्र की दृष्टि से इनके (माथुर जी के) नाटक बहुत सफ़ल होते हैं रूढ़िगत का संस्कार और नवीन प्रगति के संघर्ष को उभारने में इनकी नाटकीय कला को अद्भुत क्षमता प्राप्त है। 'भोर का तारा', 'कबूतर खाना', 'ओ मेरे सपने' आदि माथुर जी के एकांकी संग्रह हैं।

शिक्षित-अशिक्षित, शहरी-देहाती सब किसी न किसी रूप में बंदी हैं—अपनी ही जंजीरों से जकड़े हुए हैं। ऐसे लोग बहुत कम दीखते हैं जो सदैव अपने गृहीत आचार विचारों से भी चौकन्ना रहकर अपनी संस्कृति को बढ़ावा देते हों। शिक्षित व्यक्ति यदि अपने पूर्वाग्रहों तथा पक्षपातों से ऊपर उठ नहीं पाते हैं तो देहाती लोग परंपरा प्राप्त आचार विचारों का अंधानुसरण कर गतानुगतिक बने रहते हैं। वास्तव में ये दोनों अपने क्षेत्र और परिवेश से आबद्ध हैं और विनिमय के लिए शायद ही तैयार रहते हैं। पुस्तकों का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त करना एक बात है और उन्हें प्रयोग में लाना और एक बात है। वीरेन भी ग्रामीणों का उद्धार करना चाहता है और लोचन भी। किन्तु दोनों की कार्य-विधि में आकाश पातल का अन्तर है। लोचन जानता है कि भाईचारे का संबन्ध बिठाये बिना कोई भी व्यक्ति ग्रामीणों को अपना नहीं बना सकता। अतएव कालिजी शिक्षा पाकर भी उसने देहाती वेश-भूषा अपनाई और देहातियों के साथ बिलकुल देहाती जीवन बिताते हुए उनके दृष्टिकोण एवं कार्य-विधि में प्रगतिशील परिवर्तन लाने में वह सफल हुआ और सारे देहात का सगा भाई भी बन गया। दूसरी ओर देहात में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का महत्वाकांक्षी और मार्क्स्, लेनिन, रस्सल आदि के विचारों के फेर में चक्कर काटनेवाले वीरेन वातावरण के विपरीत होते देखकर कार्य-क्षेत्र से भाग खड़ा हो गया। माथुर साहब सुझाते हैं कि सब प्रकार से मुक्त व्यक्ति ही सच्चे अर्थ में क्रान्तिकारी बन सकता है और क्रान्तिकारी जल्दबाजी नहीं करता।

श्री रामकुमार वर्मा -

डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी के प्रख्यात कवि, नाटककार, आलोचक और सहृदय साहित्यकार हैं। आप आधुनिक हिन्दी एकांकी के जन्मदाताओं में एक हैं। हिन्दी एकांकी विकास में आपकी साधना

अमोघ एवं श्लाघ्य है। आप रंगमंच की आवश्यकताओं से भली भांति परिचित हैं। अतएव आपके सभी नाटक बिल्कुल अभिनेय हैं। आप ने सब प्रकार के दृश्य नाटक—ऐतिहासिक, सामाजिक, भावात्मक, मनोवैज्ञानिक आदि लिखे हैं। (1) पृथ्वीराज की आँखें (2) रेशमी टाई (3) विभूति (4) सप्तकिरण (5) चारु मित्रा (6) कौमुदी महोत्सव (7) रिमझिम आदि आपके एकांकी-संग्रह हैं।

वर्माजी की शैली सुगठित एवं काव्यमय होती है। भाषा कर्णमधुर एवं सरस होती है। प्रस्तुत एकांकी 'केसर का सौरभ' आपके श्रेष्ठ एकांकियों में एक है। भूतल स्वर्ग कश्मीर अपने अतीत इतिहास तथा यश के कारण समस्त संसार को आकर्षित किए हुए हैं, इस बात की घोषणा इस एकांकी के जरिए की गयी है। केसर का सौरभ जिस प्रकार अनायास चारों ओर फैलकर समस्त वातावरण को सुवासित करता है उसी प्रकार अनेक स्वर्गिक विभूतियाँ इस प्रदेश में अवतरित होकर अपनी ज्ञान-गरिमा, न्याय प्रियता, प्रताप ऐश्वर्य, उत्सर्ग आदि अनुकरणीय गुणों के बल पर उसे भूतल स्वर्ग बनाए हुए हैं। खूंखार पाकिस्तान भी इस पुण्य भूमि को परास्त नहीं कर पाया। और कश्मीर अविजित रहा, अडिग रहा।

—के. सत्यनारायण

रूप-शिखा

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पात्र

रूपमती	...	एक नृत्य, संगीत प्रवीणा राजपूत रमणी
बाजबहादुर	...	मालवा का सुलतान
आदमख़ान	...	साम्राट अक़बर का एक सेनापति
वीरसिंह	...	बाजबहादुर की सेना का सेनापति
विजयसिंह	...	आदमख़ान के अधीन मुग़ल सेना का एक सेनानायक

रूप-शिखा

पहला दृश्य

[स्थान—मालव-प्रदेश का सारंगपुर नामक कस्बा। तालाब के निकट एक मंदिर। मंदिर की सीढ़ियों के निकट बाजबहादुर विकल मन अस्त-व्यस्त पद-विक्षेप कर रहा है। वीरसिंह का प्रवेश।]

वीरसिंह—(झुककर कोर्निश करने के पश्चात्) जहाँपनाह विश्राम का समय....

बाजबहादुर—नहीं, वीरसिंह, बाजबहादुर की ज़िंदगी में आराम शायद नहीं है। रानी दुर्गावती के हाथों शिकस्त खाने के बाद से मानों मैं दीवाना हो गया हूँ। एक औरत से हार गया। छिः, कैसी शर्म की बात है। दुर्गावती की, दोनों हाथों से तलवार घुमाती हुई मूरत आँखों के आगे से हटती ही नहीं है।

वीरसिंह—हार या जीत मनुष्य की बहादुरी की कसौटी नहीं है। सफलता पाने के लिए पुरुषार्थ के साथ प्रारब्ध भी चाहिए। पुरुष वह है जो कर्म करता है, हार या जीत से दुखी या प्रसन्न नहीं होता। मेरी आप से विनम्र प्रार्थना है कि इस हार की कसक को भूल जाइये।

बाजबहादुर—हाँ, भूल ही तो जाना चाहता हूँ और इसलिए ज्यादा शराब पीने लगा हूँ। रोज़ नई शराब और

रोज़ नयी नाज़नी। शराब और हुस्न के नशे में मैं बेइज़्ज़ती के दर्द को, हृदय में चुभते रहनेवाले काँटे की कसक को भूल जाने की कोशिश कर रहा हूँ। आज की महफिल का इन्तज़ाम किया तुमने ?

वीरसिंह—आपने सेवक को ऐसी कोई आज्ञा नहीं दी।

बाजबहादुर—तो क्या मुझे रोज़ हुक्म देना पड़ेगा! वीरसिंह, भूख रोज़ लगती है और खाना खाया जाता है। मेरी हसरतें भी भूखी प्यासी हैं। उनके लिए भी—

वीरसिंह—नित्य ही दाना-पानी चाहिए। अच्छी बात है, भविष्य में आपको आज्ञा देने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, आप निवास-स्थान पर तो चलें, उसके पश्चात्....

बाजबहादुर—नहीं, पहले आरामगाह में आँखों के आराम देनेवाले खूबसूरत चाँद को पहुँचाओ, उसके बाद मुझे बुलाना।

वीरसिंह—और तब तक श्रीमान्....

बाजबहादुर—तब तक हम तालाब की लहरों से दिल बहलाएँगे। ऊपर तक लबालब भरा हुआ छलछलाता तालाब मानों जवानी के नशे में सराबोर औरत की बड़ी बड़ी आँखें। और तालाब के पीछे वे धानी साड़ी की तरह लहराते हुए खेत, और उनके पीछे घने हरे जंगल—औरत के दिल की तरह खूबसूरत—लेकिन राज़ से भरे हुए। चाँदनी में चमकती हुई मालवा की यह काली-काली ज़मीन—औरत की लटों की तरह

काली। (अचानक चौंककर) वीरसिंह, तुम अभी तक यहाँ खड़े हो ?

वीरसिंह—क्षमा कीजिये, आपके भाषण में मुझे कविता का आनंद आ रहा था। मैं अपना कर्तव्य भूल गया। अब जाता हूँ।

(वीरसिंह का प्रस्थान)

बाजबहादुर—बेचारा वीरसिंह, शेर की तरह बहादुर। मेरी ढाल बनकर जंग के मैदान में हमेशा साथ रहनेवाला। मैं तो समझता था, यह चलता-फिरता चट्टान का टुकड़ा है, लेकिन जान पड़ा कि इसे भी कविता में मज़ा आता है। इसकी पसलियों के नीचे एक धड़कनेवाला दिल है।

(रूपमती का—हाथ में पूजा-सामग्री लिए प्रवेश। दूसरे हाथ में वीणा है। बाजबहादुर पर एक नज़र डालकर मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ती जाती है। प्रत्येक पदक्षेप ऐसा जान पडता है मानों नृत्य कर रही है। रूपमती मंदिर में प्रवेश करके ओझल हो जाती है।)

बाजबहादुर—ज़िन्दगी के सूने आसमान में मायूसी की काली घटाओं के बीच यह कौन बिजली की तरह कौंधी और चली गयी ! मोर के रंगीन पंखों की तरह रंगीन ओढ़नी में कुंदन की तरह चमकनेवाले जिस्म को लजाये ऐसी बेफ़िक्री से जा रही थी मानों दुनिया में उसके सिवा कोई है ही नहीं। एक-एक कदम इस तरह रख रही थी मानों नाच शुरू करनेवाली है। दिल तो मानों नाच ही रहा था।

(मन्दिर में रूपमती वीणा बजाती है और गाती भी है। बाजबहादुर मन्त्र-मुग्ध की तरह सुनता है।)

नेपथ्य में—(गीत)

क्यों दिल का आराम गँवाता ?
कोयल गाती सुख का गाना
कलिका पर मधुकर दीवाना
गुन गुन रस के गाने गाता
क्यों दिल का आराम गँवाता ?

(गाना शान्त होता है लेकिन वीणा बजती रहती है।)

बाजबहादुर—'क्यों दिल का आराम गँवाता ?' मानों मुझसे ही पूछ रही है।

(गीत आगे बढ़ता है)

नेपथ्य में—(गीत)

झर-झर बहता जाता,
अपने दिल की कटता जाता,
क्यों न हृदय तेरा बह पाता ?
क्यों दिल का आराम गँवाता ?

(गीत रुकता है, किन्तु वीणा बजती ही रहती है।)

बाजबहादुर—'क्यों न हृदय तेरा बह पाता ?' बहने की क्या बात, आज तो बाढ़ आ रही है। तूफ़ान उठ रहा है।

(गीत आगे बढ़ता है)

नेपथ्य में—(गीत)

डाल डाल पर कलियाँ झूलीं,
झूल झूल कर कलियाँ फूलीं,
तू क्यों माला नहीं बनाता ?
क्यों दिल का आराम गँवाता ?

(गीत रुकता है, किन्तु वीणा बजती रहती है।)

बाजबहादुर—माला तो बाजबहादुर ने बनाई—लेकिन एक भी फूल ऐसा नहीं मिला जिसके ओंठों पर हमेशा मुसकान रह सकी हो।

नेपथ्य में—(गीत)

जब तक जीना हँसकर जीना,
अन्त मृत्यु का मदिरा पीना,
जो जग में आता, वह जाता
क्यों दिल का आराम गँवाता?

(गीत समाप्त होता है और नाचने से मुखरित होनेवाले पायलों के स्वर सुनाई देते हैं।)

बाजबहादुर—ज़िन्दगी के परदे के पीछे उम्मीद के पायल बज रहे हैं। तारीकी को चीरकर नयी किरनें मेरे दिल में रोशनी करने को बढ़ती चली आ रही हैं। ऐसा रूप मेरी आँखों ने पहले नहीं देखा, ऐसी मस्तानी वीणा की तान घुँघरूओं की ऐसी सुरीली आवाज़ पहले नहीं सुनी।

(नाच बन्द होता है)

बाजबहादुर—खामोश हो गयी हैं वे स्वर—लेकिन मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गयी हैं। ओ स्वरों की रानी, तुम परदे के पीछे ही रहकर बजाती रहो अपने सुरों को और मैं उन्हें सुनता रहूँ। सारी ज़िन्दगी एक रात की तरह खत्म हो जाए।

(रूपमती मन्दिर से बाहर निकल कर आती है। सीढ़ियाँ उतरती है। बाजबहादुर अकस्मात उसके सामने आ खड़ा होता है। रूपमती चौंक पड़ती है। उसके हाथ से थाल छूट जाता है। वीणा भी गिर पड़ती है।)

बाजबहादुर—मैं मुसलमान हूँ और भेंट-पूजा की चीजें नहीं तो

रूपमती—आप उठा देते! साहस तो खूब है। आप यहाँ से............

बाजबहादुर—'चले जाइये।' यही तो आप कहना चाहती हैं। क़िस्मत! किसीने तो इस कमबख्त से कहा होता 'आइये।' सभी कहते हैं 'जाइये।' तभी तो लूटना-चोरी करना मेरी आदत हो गयी है। ऐ हुस्न के दरिया, क्या बूँद भर पानी भी मैं तुमसे नहीं पा सकूँगा!

रूपमती—मैं गरीब हूँ—क्या इसीलिए आप ऐसा दुस्साहस कर रहे हैं? मैं कहती हूँ हटो, रास्ता छोड़ो।

बाजबहादुर—मालवा का सुलतान बाजबहादुर रास्ता छोड़ना नहीं जानता। जिस बगीचे के जिस फूल पर मेरी नज़र पड़ी है उसे मेरे गले का हार बनना पड़ा है। तुम रास्ता छोड़ने का हुक्म किसके भरोसे पर देती हो?

(बाजबहादुर आगे बढ़ता है। रूपमती कमर से बँधी छुरी निकालती है। बाजबहादुर रुक जाता है।)

रूपमती—इसके भरोसे पर। गरीब राजपूतानियाँ भी अपनी इज़्ज़त बचाना जानती हैं, सुल्तान साहब! यह कटार किसी भी अत्याचारी के कलेजे का खून पीने के लिए प्रस्तुत है और आवश्यकता पड़ने पर मेरे हृदय के रक्त में स्नान करने में भी संकोच नहीं करेगी। बोलो, रास्ते से हटते हो या नहीं?

बाजबहादुर—मैं तुम्हारे रास्ते का रोड़ा नहीं, काँटा नहीं, फूल भी नहीं, सिर्फ़ धूल बनकर पड़ा हुआ हूँ। तुम मेरी हस्ती को कुचलती हुई जाओ। (रूपमती के पैरों में सिर झुकाता है) मेरे सिर को ठुकराती हुई तुम जा सकती हो। मैं भूल गया हूँ कि मैं मालवे का सुलतान हूँ। मैं तो तुम्हारे दरवाज़े पर खड़ा हुआ भिखारी हूँ। (उठकर) जाओ, मैं रास्ता नहीं रोकूँगा। मैंने आज तक औरत को मर्द का खिलौना समझा है। आज तक किसी औरत की इज़्ज़त आबरू का ख्याल नहीं किया, मैंने अपनी ख्वाहिश पर उन्हें बे-रहमी से मसल डाला है, लेकिन आज तुम से हार मानता हूँ। तुम जाओ।

(रूपमती पूजा की चीज़ें उठाती है। बाजबहादुर चला जाता है।)

रूपमती—सुना था सुल्तान अत्यन्त निर्दय है। उसने अनेक हिन्दू और मुसलमान कुमारियों के जीवन भ्रष्ट किये हैं। आज वह मेरे आगे से भाग क्यों गया? वह सुलतान है, वह जुल्म करे, तो उसे रोकनेवाला कौन है? आज उसने अपनी शक्ति का प्रयोग क्यों नहीं किया! क्या मैं इतनी तुच्छ हूँ कि उसके हृदय में एक हल्की-सी प्यास जगाकर रह गयी। वह पागल क्यों नहीं हो उठा? लेकिन.... मैं आज यह क्यों सोच रही हूँ? आह, आज मुझे क्या हुआ है—जैसे पहली बार मैंने पुरुष को देखा है। चन्द्र को देखकर जैसे समुद्र में ज्वार उठता है उसी तरह आज मेरे हृदय में तूफ़ान उठ रहा है। यह रूप-शिखा एकान्त में जब जल रही थी उसकी ओर उड़ता हुआ एक शलभ आया—आया तो वापिस क्यों चला गया?

(विचार-मग्न-सी बैठी रह जाती है। इस बीच बाजबहादुर फिर प्रवेश करता है।)

बाजबहादुर—वाह, तुम अभी तक यहीं हो? मैं कहता हूँ, तुम चली जाओ! मेरी आँखों के आगे से चली जाओ। मैं इस हुस्न की झाँकी को बर्दाश्त नहीं कर सकता। तुम-जैसी पाक-दामन और मासूम लड़की को छू भी नहीं सकता। तुम राजपूत की लड़की हो न, रानी दुर्गावती भी तो राजपूत की बेटी है। मैं तुम्हारी इज़्ज़त करना चाहता हूँ। तुम बहुत खूबसूरत हो और मुझे अपने ऊपर भरोसा नहीं है; मुझे पापी बनने का मौका न दो। तुम जाओ। जिन सीढ़ियों पर तुमने कदम रखे हैं उनकी इबादत करता हुआ मैं ज़िन्दगी के दिन पूरे कर दूँगा। तुम जाओ।

रूपमती—जाऊँ?

बाजबहादुर—हाँ, जाओ।

(रूपमती जाती है)

बाजबहादुर—तो वह चली और मैंने नाम भी नहीं पूछा। सुनो तो ओ राजपूत की बेटी, ओ हुस्न की बिजली!

(रूपमती का प्रवेश)

रूपमती—कहिये सुलतान!

बाजबहादुर—तुम्हारा नाम क्या है?

रूपमती—मुझे 'रूपमती' कहते हैं।

बाजबहादुर—तुम्हारा घर?

रूपमती—घर सामने जो झोंपड़ी नज़र आ रही है। लेकिन राजमहलों के रहनेवालों की झोंपड़ी पर नज़र क्यों पड़ रही है?

बाजबहादुर—झोंपड़ी! काश, ऐसी झोंपड़ी में मैं भी रह पाता!

(बाजबहादुर का प्रस्थान)

रूपमती—कैसी उलझन है? वह गये तो जाएँ—मेरा मन क्यों उदास हो? झोंपड़ी और महल का मेल हो भी जाए, तब भी क्या हिन्दू और मूसलमान का मेल हो सकेगा?

(रूपमती का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—सारंगपुर के तालाब की मेढ़। एक युवती मेढ़ पर बैठी है, उसके पास खाली घड़ा रखा है। चार युवतियाँ सिर पर खाली घड़े रखे हुए आती हैं।]

आनेवाली युवतियों में से एक—क्यों री कंचन, बैठी-बैठी किसकी राह देख रही है?

कंचन—रूपमती की।

(तीन युवतियाँ चली जाती हैं।)

आनेवाली—तब तो तुझे जीवन भर राह देखनी पड़ेगी।

(आनेवाली भी कंचन के पास बैठती है।)

कंचन—यह क्या कहती है, मालती?

मालती—सच ही तो कहती हूँ। मालवा का सुलतान उसपर लट्टू हो गया और उसे अपनी बेग़म बना लिया। आखिर थी तो नाचनेवाली ही, बेग़म बनने में कौन उसकी इज़्ज़त घटती थी।

कंचन—नाचना-गाना तो कलाएँ हैं, उनका अभ्यास करने से क्या जात बदल जाती है? रूपमती है तो राजपूतानी!

मालती—है तो राजपूतानी—लेकिन राजपूतानियाँ नाच-गाकर अपने माँ-बाप का पेट भरती रही हैं! उसको भगवान ने रूप का भंड़ार दिया है—वह भी तो उसके धंधे की पूँजी है।

कंचन—कैसी बातें करती मालती! बचपन से हम रूपमती को जानती हैं। नाचने-गाने की प्रतिभा उसे प्रकृति से मिली है। रूप भी प्रकृति ने दिया है—लेकिन रूप का व्यापार

करना तो उसने कभी नहीं चाहा। कितने मतवाले भौंरे इस फूल के चारों तरफ़ चक्कर लगाकर चले गये—लेकिन क्या किसीको उसकी एक पंखुरी को स्पर्श करने का साहस हुआ ?

मालती—हाँ-हाँ, तू हमेशा पहरेदारी करती थी न ?

कंचन—पहरेदारी करती थी उस की ग़ैरत ! सच पूछो तो वह माँ-बाप के बँदीघर में—पिंजरे में फँसे हुए पंछी की तरह व्याकुल और उदास रहती थी।

मालती—तब किसी के साथ क्यों नहीं गयी ?

कंचन—भागना क्या इज़्ज़तदार नारी का काम है ?

मालती—नहीं, शरीर बेचना इज़्जत का काम है !

कंचन—रूपमती कुबेर का ख़ज़ाना लेकर भी अपने तन का सौदा नहीं कर सकती।

मालती—लेकिन, क्या तुझे नहीं मालूम कि रूपमती के पिता ने रूपमती के शरीर के तोल के बराबर सोना लेकर उसे मालवा के सुलतान की बेग़म बनने की अनुमति दी है ?

कंचन—तब तो रूपमती के पिता ने सोचा होगा कि रूपमती डील-डौल में छोटी-मोटी हथिनी होती !

मालती—तब कोई पत्थरों के मोल में भी उसे न खरीदता। सौदा तो 'कनक छरी-सी कामिनी' का ही होता है।

कंचन—लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि रूपमती अचानक ऐसी पतिता कैसे हो गयी। वह तो मुझसे कहती थी—'मेरा जी चाहता है कि मैं भी तलवार बाँधकर युद्ध करने जाऊँ। जो पुरुष ललचाई नज़रों से मेरी तरफ़ देखते हैं उनकी आँखें निकाल लूँ।'

मालती—लेकिन, कंचन, यह दिल बड़ा दग़ाबाज़ है। क्या पता, रूपमती के दिल ने ही, उसके संयम के बाँध को तोड़ डाला हो। कुछ भी हो, रूपमती अपने गाँव की शोभा थी। इसका चला जाना अच्छा नहीं हुआ।

कंचन—सच कहती हो, मुझे तो ऐसी वेदना हो रही है जैसी मणि गँवा देने पर साँप को होती है।

मालती—तो तुम भी चली जाओ रूपमती के साथ ही। बाजबहादुर का अन्तःपुर तो किसी भी युवती का स्वागत करने को प्रस्तुत रहता है।

कंचन—मुझे मंजूर है—अगर तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो।

मालती—मुझे क्यों, सारंगपुर की सारी युवतियों को ले चलो न?

कंचन—लेकिन रूपमती को पाने के बाद क्या बाजबहादुर किसी और स्त्री की तरफ़ देखेगा? बाजबहादुर ने धन से रूपमती को मोल तो लिया है, लेकिन देख लेना वह इसका बदला लेगी। वह उसे अपने संगीत के स्वरों पर इस प्रकार नचाएगी जिस प्रकार सँपेरा नाग को नचाता है।

(तीनों युवतियाँ सिरपर जल से भरे हुए घड़े रखे हुए प्रवेश करती हैं।)

एक युवती—क्या यहीं बैठी रहोगी या पानी भरकर घर भी चलोगी।

(कंचन और मालती अपने घड़े उठाकर उठती हैं और पानी भरने जाती हैं—शेष तीनों युवतियाँ दूसरी तरफ़ चली जाती हैं।)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—मॉडू के किले में रूपमती का शयनागार। बाजबहादुर पलंग पर बैठा हुआ है। रूपमती मदिरा का पात्र भरकर देती है।]

बाजबहादुर—(मद-पात्र ग्रहण करते हुए) लाओ रूपमती! मौत का प्याला पिला दो।

रूपमती—ऐसा क्यों कहते हैं आप?

बाजबहादुर—जो नशा आदमी को अपने फ़र्ज़ की याद भुला दे वह मौत ही तो है, रूपमती! देखती तो हो, हमारे चारों तरफ़ आग लगी हुई है, लेकिन तुम्हारे साये में पड़े हुए बाजबहादुर को मानों उसकी लपटें छू नहीं पा रहीं। हम तूफानी समुद्र में कमज़ोर-सी नाव पर बैठे हुए बहे जा रहे हैं। तुम्हारे रूप और शराब ने असलियत पर परदा डाल रखा है। रूपमती, तुम राजपूतनी हो न?

रूपमती—हाँ, इस बात का मुझे सदा गर्व रहा है।

बाजबहादुर—राजपूत की बेटी अपने प्रेमी को निकम्मा नहीं बनाती, तुमने मुझे क्यों बेकार कर दिया है? सदा ही प्रीत के प्याले पीते हुए तो ज़िन्दगी नहीं जी सकती। वह देखो, खूंटी पर टॅगी हुई तलवार में जंग लग गया है।

रूपमती—लग भी जाने दीजिये। तलवार चलाने के लिए वीरसिंह है, और भी हजारों सैनिक हैं। वीरसिंह सच्चा राजपूत है, वह अपने स्वामी से विश्वास-घात नहीं कर सकता और उसके अधीन सैनिक उसके इशारे पर जान देने को सदा प्रस्तुत रहेंगे।

बाजबहादुर—तलवार से कायम की गयी सलतनत तभी तक टिक सकती है जब तक उसके मालिक के हाथों में तलवार है। तुम तो जानती हो, हमपर दुश्मन ने....

रूपमती—मैं कुछ नहीं जानना चाहती। मैं सिर्फ़ तुम्हें चाहती हूँ—शेष संसार को आँखों के सामने आने भी नहीं देना चाहती। आप राजमहल के रहनेवाले हैं और मैं झोंपड़ी में रहती थी। आप का राजमहल अगर काल का थप्पड़ खाकर गिर पड़ेगा, तो झोंपड़ी तो हमारा स्वागत करेगी ही। मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध राजमहल की बंदिनी बनी, तो आप मेरे प्रेम की खातिर झोंपड़ी में रहना स्वीकार करेंगे—इसका मुझे भरोसा है। क्या एक झोंपड़ी भी—संसार हमारे लिए नहीं छोड़ेगा? यह शराब नहीं मिलेगी तो बावड़ियों का पानी भी न मिलेगा? ये तरह-तरह के भोजन नहीं मिलेंगे, तो क्या ज्वार की रोटियाँ भी नहीं मिलेंगी? मदभरी चाँदनी रातें होंगी, तुम होगे, मैं हूँगी। शराब नहीं होगी तो क्या है, वीणा में क्या उससे कम नशा है?

बाजबहादुर—और तुम्हारे स्वर में क्या वीणा की झंकार से कम जादू है। छेड़ दो वीणा की तान के साथ अपने गान। दोनों में होड़ होने दो। तान और गान की लहरों में टक्कर होने से जो भँवर पैदा हो उस में मेरी हस्ती की नाव को डूब जाने दो। छेड़ो गाना।

रूपमती—(वीणा उठाकर लाती है और बजाती और गाती है)

गूंजे आज प्रलय की वाणी!

बाजबहादुर—यह क्या गा उठी तुम ?

रूपमती—कभी कभी सत्य दीवारों को तोड़कर प्रकट हो उठता है। कोई अदृश्य प्राणों में बैठकर मेरे स्वरों को बदल गया है। (गाने लगती है)

गूँजे आज प्रलय की वाणी !
आँधी आये, बादल छाये,
बिजली भीषण रूप दिखाए,
गहर गहर अब बरसे पानी
गूँजे आज प्रलय की वाणी !
सूर्य छिपे, चंदा छिप जाए,
अंधकार में जगत् समाये,
रुक जाएँ साँसें दीवानी
गूँजे आज प्रलय की वाणी।
युग-युग से जो गीत सुनाती
पर न कभी पूरा कर पाती
गा ले उसको······

(गीत समाप्त नहीं होता कि बीच में ही एक दासी आती है और कोर्निश करती है।)

दासी—सरकार, सेनापति आए हैं।

रूपमती—इतनी रात को !

बाजबहादुर—यही तो दौलत और ताकत का घमंड़ करनेवाले नवाबों, सुलतानों, राजा-महाराजाओं, बादशाहों की ज़िन्दगी है, रूप ! (दासी से) भेज दो उन्हें।

(दासी का प्रस्थान)

रूपमती—तो अब प्रीत की महफ़िल समाप्त होती है और राजनीति का अखाड़ा प्रारम्भ होता है।

(वीणा को लिए हुए रूपमती प्रस्थान करती है।)

बाजबहादुर—राजनीति के अखाड़े में हार खाकर मैं प्रीति की महफ़िल में आ बैठा था, लेकिन राजनीति क्या मेरा पीछा छोड़ेगी? मैं देखता हूँ, वह मेरी हस्ती को धूल में मिलाकर ही दम लेगी। अब सब कुछ ख़तम होनेवाला है। मुझमें क्या नहीं था। मेरी बहादुरी का सिक्का सारे हिन्दुस्तान में माना जाता था। अचानक दुर्गावती ने मेरी शोहरत के चाँद को बादलों से ढक दिया। उसके बाद रूपमती ने हुस्न की जंजीरों से मुझे कस लिया। यह ऐसी शिकस्त है जो कभी महसूस नहीं होती—यह वह ज़हर है जो जान लेता हुआ जान नहीं पड़ता। मैं धीरे-धीरे मौत के मुँह में दाख़िल हो रहा हूँ। अक़बर बादशाह ने आदमखान को भेजकर मुझपर चढ़ाई कर दी है। मेरी फ़ौज उससे लोहा ले रही है और मैं शराब और हुस्न के दरिया में बह रहा हूँ।

(वीरसिंह का प्रवेश)

वीरसिंह—(कोर्निश करके) सरकार, आदमखान ने क़िले पर पूरे बल से आक्रमण कर दिया है और एक तरफ़ की दीवार टूट भी चली है।

बाजबहादुर—दुश्मन ने रात में ही हमला बोल दिया है?

वीरसिंह—जी हाँ, रात में ही। अब क़िला हमारी रक्षा नहीं कर सकता।

बाजबहादुर—जब किले की दीवार ने जवाब दे दिया है तब बचने का रास्ता ही क्या है? अफसोस है कि हथियारों की झंकार में मज़ा लेनेवाला बाजबहादुर औरत के पाँवों की रुनझुनन में फँसा हुआ है। यह क्या हो रहा है? मैं इस दुनिया में आँधी की तरह आया था और बुलबुले की तरह जा रहा हूँ। वीरसिंह यह मालवा देश दीवाना बना देनेवाला है। यहाँ काले-काले खेतों में अफ़ीम पैदा होती है, यहाँ की हवा में अफ़ीम है। यहाँ की नाजनियों की साँसों में अफ़ीम है। मुझे भी इन्होंने अफ़ीमची बना दिया है। मेरी तलवार लाओ। रूपमती को बुलाओ। उस सफ़ेद नागिन का फन मैं काट डालूँगा।

(नेपथ्य में तोप चलने की आवाज़)

बाजबहादुर—सुना, वीरसिंह! अब दुश्मन दूर नहीं है। मैं रुक नहीं सकता। दुश्मनों से बदला लेने के लिए ज़िन्दा रहना है। मैं जाता हूँ—लेकिन जाते-जाते इन धरती के हूरों को जिन्होंने सिपाही को अफीमची बना दिया है, तलवार के घाट उतारे जाता हूँ। मैं पागल था कि एक के बाद एक भोली-भाली कली को अपनी ख्वाहिश की आग में झोंकता गया। मैं किसीका गुलाम नहीं बना था, लेकिन रूपमती ने मुझे दुनिया की सब चीजों से दूर करके अपने हुस्न के बादलों से ढक लिया। मैं अपने आप को भूल गया। मैं जाता हूँ, लेकिन रूपमती भी अब ज़िन्दा नहीं रह सकती।

(तलवार को म्यान से निकालता हुआ प्रस्थान करता है।)

वीरसिंह—मूर्ख सुलतान! राजपूत बाला के सतीत्व का मोल कम नहीं है—चाहे वह नर्तकी ही क्यों न हो। रूपमती, ग़रीब बाप की बेटी है, तभी तो धन देकर सुलतान ने उसे खरीदकर बेगम बना लिया। लेकिन उसने रूप की ज्वाला में इस पतंगे को भून डाला। पर रूपमती की जान लेने को प्रस्तुत है, लेकिन मैं उसे मरने नहीं दूँगा। जाऊँ, उसे बचाऊँ।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान—आदमख़ान के डेरे के बाहर। आदमख़ान और उसका एक साथी—जो राजपूत जान पड़ता है—दोनों डेरे के सामने इधर से उधर घूम रहे हैं, मानों किसी की प्रतीक्षा में। समय—रात]

आदमख़ान—इतनी आसानी से माँडू का किला हमारे हाथ आ जाएगा, इसकी मुझे भी न उम्मीद थी, विजयसिंह !

विजयसिंह—निश्चय ही यह एक आश्चर्य की बात है। बाजबहादुर कायर नहीं है, न जाने क्योंकर अपने पुरुषार्थ को, अपनी शक्ति को भूल बैठा है !

आदमख़ान—सुना है, रूपमती की ख़ूबसूरती ने उसे मदहोश कर दिया है।

विजयसिंह—निस्संदेह, रूपमती के रूप-गुण की चर्चा सारे मालवा में है। वह न केवल अनिन्द्य सुंदरी है बल्कि एक श्रेष्ठ गायिका एवं निपुण नर्तकी भी है।

आदमख़ान—बादशाह आलिमा का भी हुक्म है कि मालवा को फ़तह करके रूपमती को उनके सामने हाज़िर किया जाए।

विजयसिंह—(ताने के साथ) सम्राट साहित्य और कला के प्रेमी जो हैं। उनकी राज-सभा के एक रत्न तो हैं ही, रूपमती के पहुँच जाने से शोभा और भी बढ़ जाएगी, लेकिन रूपमती को सम्राट की राज-सभा की नर्तकी बना सकना संभव भी है, इसमें मुझे संदेह है।

आदमख़ान—बाजबहादुर और शाहंशाह अक़बर दोनों में से एक को पसंद करने को कहा जाए तो एक नाचनेवाली—दौलत से अस्मत का सौदा करनेवाली—नाचनेवाली—क्या बाजबहादुर को पसंद करेगी ?

विजयसिंह—औरत—चाहे वह नाचनेवाली हो—दिल का सौदा एक बार करती है ।

आदमख़ान—एक बार करती है—रूपमती की ज़िन्दगी में वह 'एक बार' अभी नहीं आया है ।

विजयसिंह—तब वह बाजबहादुर के हरम में किसलिए और किस तरह आ गयी ?

आदमख़ान—उसके वालदेन का लालच और उसकी बेबसी दोनों ने बे-रहमी से उसे ला पटका माँडू के राजमहल में ।

विजयसिंह—ऐसा सोचने का कारण ?

आदमख़ान—जो प्यार करता है वह अपने प्रेमी को पालतू पंछी नहीं बनाता । वह उसे रात-दिन शराब और संगीत के नशे में मस्त रखकर उसके फ़र्जों की तरफ़ से बे-ख़बर नहीं कर देती । वह उसकी ज़िंदगी की ताकत बनकर आता है—बेहोशी नादानी और कमज़ोरी बनकर नहीं आता ।

विजयसिंह—तो सम्राट अक़बर के दरबार में जाना वह पसंद करेगी—इसका भी क्या निश्चय ?

आदमख़ान—इसमें मुझे जरा भी शक नहीं है । वह सच्चे मानी में अपने फन की इबादत करनेवाली है, जिस्मानी ख्वाहिशों से कहीं ऊपर । ऐसे शख़्स के लिए हिन्दुस्तान में

सबसे अच्छी जगह है—बादशाह अकबर का दरबार जो तानसेन की तान से गूँजता रहता है। बादशाह अपने दरबार में हर फ़न की माहिर शख्सियत को इज़्ज़त देना चाहते हैं।

विजयसिंह—और अपने अतःपुर में भारत भर की प्रत्येक अनिंद्य सौंदर्यमयी युवती को अपने विलास का साधन बनाना चाहते हैं।

आदमख़ान—खामोश, तुम बादशाह आलिमा की तौहीन करते हो!

विजयसिंह—सिपहसालार आदमख़ान! राजपूत सच बोलने में भय से भी भयभीत नहीं होता। इसमें बादशाह की तौहीन का प्रश्न नहीं है—यह एक सचाई है। क्या सम्राट ने अपने राजमहल में अनेक राजघरानों की राजकुमारियों को बेग़म बना कर नहीं रखा? मैं उन्हें देवता नहीं समझता—आदमी भी नहीं।

आदमख़ान—क्या समझते हो?

विजयसिंह—जो समझता हूँ उसे ज़बान पर नहीं लाना चाहता।

आदमख़ान—क्योंकि जानते हो कि आदमख़ान की तलवार ज़बान काट लेगी।

विजयसिंह—जब तक हाथ में तलवार है, कोई मेरी ज़बान नहीं काट सकता। एक क्या, हज़ार आदमख़ान मेरी छाया को भी नहीं छू सकते।

आदमख़ान—बदतमीज़ राजपूत, तुझे मौत का भी डर नहीं है!

(विजयसिंह तलवार निकालता है)

विजयसिंह—जबान बंद करो और तलवार निकालो।

(इसी समय एक मुसलमान सैनिक आकर आदमख़ान को कोर्निश करता है। फिर तलवार निकालकर खडा होता है।)

सैनिक—तलवार म्यान में कीजिए।

विजयसिंह—राजपूत की तलवार एक बार म्यान के बाहर आकर रक्त गंगा में स्नान किए बिना म्यान में नहीं जाती।

आदमख़ान—(तलवार निकालता हुआ) विजयसिंह! मेरी तलवार को तुम्हारी तलवार की चुनौती मंजूर है, लेकिन यह जगह तलवारों का करतब दिखाने के लिए मौजूँ नहीं है। तुम राजपूत हो—और राजपूत नमक का कर्ज़ अदा करता है—या झेलता है। यहाँ तुम बादशाह आलिमा के साथी की हैसियत से आये हो—वर्षों से स्वामी का नमक खाया है। इसे अदा करना है। हम आपस में लड़कर खुदकुशी तो करेंगे ही, लेकिन दुश्मन को भी फ़ायदा पहुँचाएँगे।

(विजयसिंह तलवार म्यान में करता है।)

विजयसिंह—जीवन में प्रथम बार यह तलवार बिना खून पिए अपने म्यान में जा रही है। इसलिए यह अपने म्यान में बेचैन रहेगी।

आदमख़ान—इसकी बेचैनी दूर करने के बहुत मौके मिलेंगे, विजयसिंह! (आगत सैनिक से) तुम क्या ख़बर लाए हो?

सैनिक—बाजबहादुर हाथ न आ सका—लेकिन रूपमती माँडू के महल में ही है।

आदमख़ान—रूपमती माँडू के महल में ही है? तो अब चिड़िया उड़ने न पाए। इसका इन्तज़ाम रखो। साथ ही

यह भी ख्याल रखो कि उसे कोई तकलीफ़ न हो। रूपमती को गिरफ़्तार करने के माने हैं, बाजबहादुर को गिरफ्तार कर लेना।

विजयसिंह—सो कैसे ?

आदमख़ान—मणिवाला साँप मणि की तलाश करता हुआ उसके पास आ ही पहुँचता है। (सैनिक से) जाओ, रूपमती के आराम का इंतज़ाम करो—और उनसे कहो कि आदमख़ान उनसे मिलना चाहता है।

सैनिक—जो हुकम !

(सलाम करके प्रस्थान)

आदमख़ान—(विजयसिंह से) अब हम भी एक दूसरे से रुखसत लें। मुझे देखना है, रूपमती में कितना फ़न है—कितनी राजपूती है और कितनी इन्सानियत है।

विजयसिंह—हूँ ! तो आप ज़हरीली नागिन के बिल में हाथ डालना चाहते हैं ?

आदमख़ान—बेशक ! आदमख़ान पर साँपिन के काटे का ज़हर नहीं चढ़ता।

(कहता हुआ चला जाता है।)

विजयसिंह—अभी तक साँपिन से पाला ही नहीं पड़ा है, सिपहसालार ! इतने दिन बाजबहादुर की चहारदीवारी में बंद रहकर भी रूपमती पालतू साँपिन नहीं बनी है जिनके ज़हर के दाँत टूट गये हों। यह विलासी कुत्ता—क्या करेगा—इसपर निगाह रखनी ही पड़ेगी।

(प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

[माँडू के महल में रूपमती का कक्ष। कक्ष की सजावट सुरुचि और कलापूर्ण है। संगीत एवं नृत्य से सम्बन्ध रखनेवाले प्रसाधन भी रखे हुए हैं; किन्तु हैं कुछ तितर-बितर से। समय संध्या। रूपमती घायल अवस्था में शय्या पर पड़ी हुई है। वीरसिंह पास ही बैठा है।]

वीरसिंह—भाग गया, दुष्ट !

रूपमती—दुष्ट ! कितना कठोर शब्द है यह, वीरसिंह ! उनके प्रति ऐसे शब्द का प्रयोग न करो। इस तीर की नोक मेरे कलेजे में चुभती है।

वीरसिंह—आपके कलेजे में ! क्या कह रही हैं आप ?

रूपमती—ठीक ही तो कह रही हूँ।

वीरसिंह—उसने आप के प्राण लेने का प्रयत्न किया था। वह आप को प्यार नहीं करता।

रूपमती—उनकी तलवार का घाव मुस्कुराकर कह रहा है, वह मुझे सचमुच प्यार करते थे—प्राणपण से चाहते थे। आज भी चाहते हैं। जिन्होंने मेरे लिए राज्य-वैभव गँवाया—सर्वस्व नाश कराया—किस के लिए ? एक नर्तकी के लिए !

वीरसिंह—केवल गायिका—केवल नर्तकी।

रूपमती—नहीं तो क्या क्षत्रिय बाला ! तुम क्षत्रिय हो और इसीलिए तुम्हारी नज़र मेरे क्षत्रियत्व पर जाती है—अर्थात् तुम सोचते हो कि रूपमती ने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है—किन्तु वीरसिंह—केवल किसी कुल में जन्म ले लेने से ही उस कुल के संपूर्ण गौरव और उत्तरदायित्व में उसका भाग नहीं हो

जाता। मुझे भगवान ने रूप दिया—शरीर में स्फूर्ति दी, संगीत के प्रति रुचि प्रदान की—मेरे माता-पिता ने मेरी इस प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा को परखा—उसे अध्ययन और अभ्यास की खराद पर चढ़ाकर साफ़ किया और बाज़ार में बेच दिया। भरपूर कीमत पायी।

वीरसिंह—आपके पिता ने क्षत्रियोचित कार्य नहीं किया।

रूपमती—क्षत्रियोचित चाहे न किया हो, मनुष्योचित तो किया ही। मैं नाचती थी—मैं गाती थी। यह संसार की चर्चा का विषय बन गया था। जिन्हें अपने ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व पर अभिमान था उनकी आँखों में उपेक्षा, अवहेलना एवं घृणा के अक्षर मैंने पढ़े हैं। मैं कला के लिए अपने क्षत्रियत्व को तिलांजलि देने को तैयार थी। मैं कला के लिए जीना चाहती थी और कला के लिए ही मरना।

वीरसिंह—और कला के लिए ही आपने बाजबहादुर को आत्म-समर्पण किया?

रूपमती—मेरे लिए जीवन से बड़ी वस्तु है कला और कला से भी बड़ी वस्तु है प्रेम। प्रेम पर मैं कला को भी न्योछावर करने को प्रस्तुत थी और हूँ।

वीरसिंह—वह प्रेम आपने बाजबहादुर में देखा?

रूपमती—हाँ, देखा! प्रथम दर्शन में जिस तरह सीता ने राम को, शकुन्तला ने दुष्यन्त को अपना हृदय सर्मपित कर दिया था उसी तरह मैंने भी बाजबहादुर को कर दिया।

वीरसिंह—वह मुसलमान है, यह भी........

रूपमती—(बात काटकर) यह भी मैं जान गई—किन्तु प्रीत के सागर में जाति और धर्म के दायरे नहीं हैं। वहाँ मनुष्य जाति एक है। हम दोनों इन्सान थे, हमने अपने प्राण एक कर लिए। न वह मुसलमान रहा, न मैं हिन्दू। मैंने अपना जीवन उनके चरणों पर चढ़ा दिया। आज वह मेरे जीवन को निश्शेष करना चाहते थे, तो उनको इसका अधिकार था।

वीरसिंह—मैं एक प्रश्न पूछूँ?

रूपमती—पूछो।

वीरसिंह—आप बाजबहादुर को प्यार करती थीं, तो उससे उसकी धीरता क्यों छीन ली—क्यों उसे अपने रूप-जाल का बन्दी बना लिया?

रूपमती—इसलिए कि मुझे उनपर क्रोध था। उन्होंने मेरे प्रेम को समझा नहीं। वे अपना नवाबपन, धन-दौलत—वैभव-विलास लेकर मेरी झोंपड़ी में पहुँचे और मुझे खरीद लाये। यही क्या प्रेम करने का तरीका है? उन्होंने धन से मेरा शरीर खरीदा और मेरे प्रेम ने उनसे बदला लिया। मैं उन्हें प्यार भी करती हूँ—उनसे घृणा भी करती हूँ। और प्यार करती हूँ इसीलिए घृणा करती हूँ। बाजबहादुर ने समझा कि मैं उनसे बदला ले रही हूँ। उन्हें मुझपर क्रोध आया और क्रोध इसलिए आया कि वह मुझे प्यार करते हैं।

(आदमख़ान का प्रवेश। साथ में दो सैनिक भी हैं।)

आदमख़ान—किधर है, रूपमती?

वीरसिंह—(तलवार तानता हुआ) यहीं है, आदम ।

(आदमख़ान भी तलवार तानता है ।)

रूपमती—शांत वीरसिंह! शांत आदमख़ान! रूपमती जा रही है । उसके लिए रक्त-पात अनावश्यक है ।

आदमखान—कहाँ जा रही हो, रूपमती! तुमको तो दिल्ली का दरबार याद कर रहा है ।

रूपमती—इसीलिए तो मैं अपनी आग में स्वयं जलकर भस्म हो जाना चाहती हूँ । जलने और जलाने का खेल मैंने एक बार खेल लिया—एक आदमी के साथ खेल लिया । इस खेल को मैं पेशा नहीं बनाना चाहती ।

आदमख़ान—लेकिन शाहंशाह अक़बर कला के पारखी हैं—उन्होंने आपकी शोहरत सुनी है और वह चाहते हैं कि तानसेन की तरह आप भी दिल्ली के दरबार से कला को पेश करें ।

रूपमती—रूपमती और तानसेन में अंतर है—आदमख़ान ।

आदमख़ान—क्या ?

रूपमती—यही कि वह पुरुष है और मैं नारी!

आदमख़ान—कला की दुनिया में मर्द और औरत का फ़र्क नहीं ।

रूपमती—नहीं होना चाहिए—लेकिन है । इन्सान उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाता जहाँ स्त्री-पुरुष का अंतर समाप्त हो जाता है । सम्राट पुरुष हैं—सौंदर्य के प्रति उनकी आसक्ति है । मैं जान-बूझकर तो जाल में नहीं फँस सकती ।

आदमख़ान—लेकिन, मुझे तो सम्राट की आज्ञा माननी है।

वीरसिंह—मेरे जीते जी आप इनको दिल्ली नहीं ले जा सकेंगे।

आदमख़ान—मैं इनकी मर्ज़ी के खिलाफ़ तो इन्हें नहीं ले जाऊँगा। आदमख़ान इन्सान है—वह रूपमती और बाजबहादुर के जज़्बात से खिलवाड़ नहीं करेगा और सम्राट अक़बर तो इन्सान से भी ऊपर फ़रिश्ते हैं। वह दुश्मन की भी क़द्र करते हैं। वह बाजबहादुर को जिंदा रखना चाहते हैं—माँडू के नवाब की हैसियत से उनकी इज़्ज़त करना चाहते हैं। वह कहीं भी हों, उन्हें खोज लाना होगा।

रूपमती—क्या कहा! आप उन्हें खोजेंगे।

आदमख़ान—बेशक, उन्हें खोजकर आपका माल आपके हवाले कर दिया जाएगा।

रूपमती—तब रूपमती भी जिंदा रहेगी। जिस आदमी ने मेरे कलेजे में छुरी भोंकी है, मैं उसके रास्ते के काँटे साफ़ करूँगी। मैं जिऊँगी। वीरसिंह, मैं जिऊँगी। आदमख़ान मुझे बचाओ—मैं जिऊँगी।

आदमख़ान—आप ज़रूर जिएँगी। मुझे तो पता ही नहीं था कि तुम घायल हो, नहीं तो हकीम को साथ ही लाता। ख़ैर, अब इंतज़ाम हो जाएगा। वीरसिंह—आप इन्हें दूसरे कमरे में आराम से लिटाइये—मैं इनके इलाज का इंतज़ाम करता हूँ।

(सैनिकों सहित जाता है।)

वीरसिंह—(रूपमती से) क्या आपने आदमख़ान का भरोसा कर लिया ?

रूपमती—रूपमती चोर के घर तक जाएगी ।

वीरसिंह—और लूट ली गयी तो ।

रूपमती—रूपमती क्षत्रिय बाला है ।

वीरसिंह—तो कभी-कभी तुममें क्षात्र तेज भी जागता है । मुझे यह सुनकर संतोष हुआ । फिर भी तुम अबला हो—घायल हो और यह यवन-समुदाय खूँखार भेड़ियों से कम नहीं है । मुझे चिंता होती है ।

रूपमती—तुमको भी मेरी चिंता होती है ! क्यों ?

वीरसिंह—नदी में डूबनेवाले अपरिचित के लिए भी सहानुभूति जाग पड़ती है, रूपमती !

रूपमती—अपरिचित के लिए। तब ठीक है। तब तुम मुझे सहारा दे सकते हो । मुझे ले चलो दूसरे कमरे में ।

(वीरसिंह सहारा देकर रूपमती को ले जाता है ।)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

[स्थान—माँडू गढ से कुछ दूर आसफ़ख़ान की छावनी के निकट मार्ग। रास्ते पर कोई चल-फिर नहीं रहा है। समय संध्या। आसमान में कुछ-कुछ लाली है। एक तरफ़ से विजयसिंह आता है, दूसरी तरफ़ से वीरसिंह। दोनों एक-दूसरे को घूरकर देखते हैं।]

वीरसिंह—इस तरह क्या देख रहे हो?

विजयसिंह—मैं तो तुम्हें पहचानने का यत्न कर रहा हूँ, लेकिन तुम मुझे क्यों घूर रहे हो?

वीरसिंह—मैं भी तुम्हें पहचानना चाहता हूँ।

विजयसिंह—तब पहचाना मुझे?

वीरसिंह—तुमने मुझे पहचाना?

विजयसिंह—कदाचित् दोनों ने दोनों को नहीं पहचाना।

वीरसिंह—लेकिन तुम्हारी पोशाक से जान पड़ता है कि तुम मुग़ल सेना के कोई अधिकारी हो।

विजयसिंह—और तुम माँडू की सेना के कोई ऊँचे अधिकारी जान पड़ते हो।

वीरसिंह—ठीक! मैं सेनापति हूँ।

विजयसिंह—हुँ।

वीरसिंह—हुँ क्या?

विजयसिंह—यही कि बाजबहादुर है मुसलमान और उसका सेनापति हिन्दू!

वीरसिंह—हुँ!

विजयसिंह—हुँ क्या?

वीरसिंह—यही कि दिल्ली का सम्राट है मुसलमान और उसके अनेक मंत्री, सेनापति और अधिकांश सेना है हिन्दू।

विजयसिंह—क्षत्रिय !

वीरसिंह—स्वाधीनता और अपनी आन के लिए प्राण देनेवाले।

विजयसिंह—अपने देश को अपने हाथों से जंजीरों में कसनेवाले।

वीरसिंह—हुँ !

विजयसिंह—फिर हुँ।

वीरसिंह—हुँ।

विजयसिंह—यह हुँ—बहुत भयंकर है।

वीरसिंह—हुँ।

विजयसिंह—इस हुँ का घूँघट खोलना पड़ेगा।

वीरसिंह—घूँघट खोलने का रिश्ता होगा, तो घूँघट खुलेगा।

विजयसिंह—तो रिश्ता आज ही हो जाए।

वीरसिंह—देखो, तुम राजपूत हो।

विजयसिंह—क्यों नहीं ?

वीरसिंह—राजपूत धोखा नहीं देता।

विजयसिंह—अगर वह मनुष्य है, तो।

वीरसिंह—तो तुम मनुष्य हो ?

विजयसिंह—मनुष्य बनना चाहता हूँ।

वीरसिंह—कैसे ?

विजयसिंह—अपनी इच्छा का स्वामी बनकर।

वीरसिंह—हुँ।

विजयसिंह—हुँ—अब इस हुँ का अर्थ बतलाइए।

वीरसिंह—अर्थ यह है कि तुम मेरे मित्र बन सकते हो।

विजयसिंह—इसलिए कि मित्र बनकर दोनों माँडू के नवाब के दास बनकर उसके लिए अपनी गरदनें कटा डालें।

वीरसिंह—बाजबहादुर तो अंधकार के गर्त में समा गया।

विजयसिंह—तो दोनों मिलकर इतिहास में अपना नाम अमर कर डालें।

वीरसिंह—नहीं विजय—विद्रोह करके।

विजयसिंह—विद्रोह तो मैंने करना चाहा था और मेरी तलवार आदमख़ान की गरदन पर चलनेवाली भी थी।

वीरसिंह—तब ?

विजयसिंह—संधि हो गयी।

वीरसिंह—दिल्ली पहुँचने पर आदमख़ान की तलवार तुम्हारी गरदन पर होगी।

विजयसिंह—हुँ ?

वीरसिंह—अब तुम हुँ करने लगे।

विजयसिंह—हुँ !

वीरसिंह—इस हुँ का घूँघट खोलना पड़ेगा।

विजयसिंह—हुँ का अर्थ है कि विजयसिंह दिल्ली नहीं जाएगा।

वीरसिंह—क्या करेगा ?

विजयसिंह—मालवा में अफ़ीम की खेती।

वीरसिंह—अफ़ीम की या अफ़ीमचियों की!

विजयसिंह—दोनों की।

वीरसिंह—हुँ!

विजयसिंह—हुँ का अर्थ समझाओ!

वीरसिंह—मेरा तात्पर्य है कि अफ़ीम या अफ़ीमचियों की खेती करना राजपूत का काम नहीं है।

विजयसिंह—लेकिन कुसुंबा के प्रेमी तो राजपूत ही हैं। अफ़ीम का नशा उन्हे ही भाता है।

वीरसिंह—हुँ!

विजयसिंह—हुँ—हुँ क्या?

वीरसिंह—हुँ कि राजपूत यदि हमेशा होश में रहे, तो अपने हाथ से अपनी ही गरदन काट डालें।

विजयसिंह—हुँ।

वीरसिंह—हुँ क्या?

विजयसिंह—हुँ कि राजपूत का बेहोश रहना ही ठीक!

विजयसिंह—इस समय तुम कहाँ से आ रहे हो?

वीरसिंह—तुम कहाँ से आ रहे हो?

विजयसिंह—पहले तुम बताओ।

वीरसिंह—पहले तुम।

विजयसिंह—मैं रूपमती के पास से!

वीरसिंह—रूपमति के पास से—वहाँ क्यों गए थे?

विजयसिंह—मुजरा—

वीरसिंह—मुजरा सुनने—पागल वह आजकल नाच नहीं सकती—हरेक आदमी के आगे नहीं नाचती।

विजयसिंह—तुमने उसका नाच देखा है ?

वीरसिंह—तुम वहाँ क्यों गये थे, पहले यह बताओ।

विजयसिंह—आदमख़ान ने भेजा था।

वीरसिंह—हुँ !

विजयसिंह—हुँ क्या ?

वीरसिंह—कुछ नहीं, वह आदमख़ान, वह सम्राट अक़बर, वह बाजबहादुर, वह वीरसिंह—और यह रूपमती।

विजयसिंह—हुँ !

वीरसिंह—हुँ क्या ?

विजयसिंह—यही कि तुम होश में नहीं हो।

वीरसिंह—तुमने रूपमती को देखा है ?

विजयसिंह—हाँ, देखा है।

वीरसिंह—कैसी हैं वह ?

विजयसिंह—शराब का छलकता हुआ जाम।

वीरसिंह—पीने को पागल हुआ तुम्हारा मन ?

विजयसिंह—हाँ, लेकिन....

वीरसिंह—हुँ।

विजयसिंह—हुँ क्या ?

वीरसिंह—उसे जो देखता है, वह पीना चाहता है !

विजयसिंह—तुमने शायद उसे देखा नहीं है।

वीरसिंह—बरसों देखा है।

विजयसिंह—तो तुम्हारी नसों में खून नहीं है ।

वीरसिंह—हुँ !

विजयसिंह—हुँ क्या ?

वीरसिंह— हुँ !

(अपनी तलवार पर हाथ रखता हुआ चला जाता है ।)

विजयसिंह—हुँ !

(जाते हुए वीरसिंह पर एक भेदभरी नजर फेंककर और आश्चर्य प्रकट करके चला जाता है ।)

[पट परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

[स्थान—माँडू गढ़ में रूपमती का शयन-कक्ष। समय रात्रि का प्रथम प्रहर। कक्ष में विलास के प्रसाधन एवं कला-साधना के साधन यथास्थान सुरुचि के साथ रखे हैं। कक्ष में अनेक शमईयाँ (शमादान) हैं किन्तु उन्हें प्रज्वलित नहीं किया गया है, केवल एक लघु दीप जल रहा है। दीवारों पर सुंदर चित्र टँगे हुए हैं। रूपमती अकेली घूम रही है। उनके हाथ में एक सुंदर रत्न-खचित स्वर्ण पात्र है जिसमें कुछ द्रव पदार्थ है।]

रूपमती—(गाती है)

विष भी आज अमृत बन जावे।

आज अमावस की निशि काली।
घिरी घटाएँ दिशि-दिशि काली।
गहरी है वह विष की प्याली।

आज लालसा प्यास बुझावे।
विष भी आज अमृत बन जावे।

चले गये जिनको था जाना
दुर्लभ जीवन-बोझ उठाना
हुआ असम्भव अब तो गाना,
हृदय आखिरी गान सुनावे।

विष भी आज अमृत बन जावे।

आज कैसा भयानक सन्नाटा छाया हुआ है। काली रात को काली घटाओं ने और भी काला कर दिया है। खेतों से अफ़ीम की महक आ रही है और इस जाली में मरण का काला नाग फुफकार रहा है।

(वीरसिंह का प्रवेश)

वीरसिंह – रूप ! यह तुम्हारा क्या रूप है । इस क्षीण से दीपक के प्रकाश में मेघमाला से तुम्हारे लहकाते हुए काले-काले केश-जाल ब्याल-दल के समान प्राणों को डसना चाह रहे हैं ।

रूपमती—ओह, तुम भी....

वीरसिंह—मैं क्या ?

रूपमती—तुम भी रूप को निरख सकनेवाली नज़र रखते हो—रूप को निरखकर पागल होनेवाला दिल रखते हो—मतवाले की भाँति अनर्गल प्रलाप करनेवाली वाणी रखते हो !

वीरसिंह—मैं भी मानव....

रूपमती—हाँ, तुम भी मानव हो—मैं तो समझती थी, तुम्हारे वक्षस्थल में हृदय के स्थान पर पत्थर है ।

वीरसिंह—पत्थर नहीं है, रूपमती ! तुम्हारे आकर्षण की ज्वाला में जलनेवाला एक कोमल हृदय है—निर्बल हृदय है ।

रूपमती—आज मैं तुम्हें तुम्हारे दुर्बल क्षणों में पकड़ पायी हूँ । आशा है, आज तुम मुझसे झूठ नहीं बोलोगे ।

वीरसिंह—आज मैं तुम्हारे सामने नंगा हो गया हूँ ।

रूपमती—और तुम्हें नंगा देखकर भी मैं मुँह नहीं फेर रही हूँ—क्रोध भी नहीं कर रही हूँ । जानते हो क्यों ?

वीरसिंह—नहीं !

रूपमती—इसलिए कि आज मैं स्वयं नितान्त नंगी होना चाहती हूँ । संसार के दिये हुए और विधाता के दिये वस्त्र फाड़कर फेंक देना चाहती हूँ । बोलो वीरसिंह—तुम मुझे नितान्त नग्न देखकर मुझसे घृणा तो नहीं करोगे ?

वीरसिंह—क्या यही प्रश्न तुम मुझसे पूछना चाहती थी ?

रूपमती—नहीं

वीरसिंह—तब ?

रूपमती—मैं जानना चाहती थी कि मेरी एक मुसलमान से प्रीत देखकर क्या तुम मुझसे घृणा करते थे ?

वीरसिंह—घृणा मैं तुम से नहीं कर सका, क्योंकि तुम बहुत सुंदर हो, किन्तु मुझे तुमपर क्रोध आता था।

रूपमती—और आज ?

वीरसिंह—मेरा प्यार बाँध तोड़कर बहा जा रहा है। तुम्हें मुझपर........

रूपमती—लेकिन वीरसिंह, तुम्हें मुझपर क्रोध करने का क्या अधिकार है। हृदय तो हृदय है—चाहे वह हिन्दू का हो चाहे मुसलमान का। बाजबहादुर का पागलपन तुम्हारे पागलपन से भी अधिक गहरा था—उसने अपने पागलपन में मालवा का राज्य भी गँवा दिया और तुम मालवा के सेनापति पद को मेरे प्यार से तौलते रहे। कभी साहस करके सत्य को मुँह पर नहीं ला सके। सुनो वीरसिंह, मैं प्यार की इज़्ज़त करती हूँ।

वीरसिंह—तो तुम मुझे स्वीकार करोगी ?

(रूपमती की तरफ़ बढ़ता है)

रूपमती—(लाल लाल आँखों से देखती हुई) दूर हो जाओ, नारकी कुत्ते ! झूठी पत्तल कुत्ता चाटता है।

वीरसिंह—(रुककर) ज़हरीली नागिन !

रूपमती—ज़हरीली—हाँ, ज़हरीली (कहकर प्याली का आसब पी जाती है), ज़हरीली।

वीरसिंह—यह तुमने क्या पिया!

रूपमती—रूपमती ने आज तक क्या-क्या पिया है वीर सिंह! तुमने कभी पूछा? किसी ने कभी पूछा? ज़हरीली नागिन को भी कभी-कभी मरण की कामना होती है। इस प्याली में ऐसा विष था जो ज़हरीली नागिन को भी समाप्त कर दे।

वीरसिंह—तुम हँसी कर रही हो। तुममें भारत की साम्राज्ञी बनने की शक्ति है, रूपमती! तुम क्यों पराजित हो गयी निराशा से!

रूपमती—निराशा से नहीं! अपने मनुष्यत्व ने मुझे हरा दिया है। मैं एक की होकर अनेक की नहीं हो सकती। मैं कला की साधना करना चाहती थी—वेश्या बनना नहीं।

वीरसिंह—तुम्हें कौन वेश्या बनाना चाहता है।

रूपमती—अभी तुम ही ऐसा ही कुछ यत्न कर रहे थे। उससे पहले आदमखान भी ऐसी कृपा दिखा रहे थे। निष्ठुर विधाता ने क्यों मुझे इतना रूप दिया कि प्रत्येक पुरुष इस पुष्प का मधुप बनना चाहता है। क्या मुझे एक सती की भाँति जीवन बिताने का अधिकार नहीं है!

वीरसिंह—अवश्य है। मैं वैद्य को लाता हूँ जो तुम्हारे प्राण बचाएगा और उसके पश्चात् वीरसिंह प्राण देकर भी तुम्हारी उज्ज्वल चादर को उज्ज्वल रखने का प्रयत्न करेगा।

(वीरसिंह जाने को उद्यत होता है। रूपमती उसका हाथ थाम लेती है।)

रूपमती—तुम्हें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। मैंने विष-पान नहीं किया। सिर्फ़ एक गहरी सुरा ढाली है। आज मैं आदमख़ान की बेगम बन रही हूँ।

वीरसिंह—बेग़म !

रूपमती—बेग़म ! सारे ग़मों से दूर। वहाँ जहाँ बादलों में बिजली चमक रही है। आदमख़ान ने बतलाया है कि वे—मेरे हृदय-धन, सारंगपुर के मंदिर की सीढ़ियों पर पहली बार मिलनेवाले—मेरे वे अब इस संसार में नहीं हैं। तब मुझे....

वीरसिंह—उनकी आत्मा को व्यथित करने के लिए उनकी आँखें मूँदते ही आदमख़ान की बेग़म बनना तुमने स्वीकार किया।

रूपमती—हः हः हः बेग़म बनना स्वीकार किया। आदमख़ान कहता है कि रूपमती बहुत सुंदर है—इस सुंदर शरीर की उसे भूख है—मैं उसे दान दूँगी—इस शरीर का दान दूँगी। लेकिन आत्मा....

वीरसिंह—आत्मा मर चुकी है !

रूपमती—नहीं वह बाजबहादुर की आत्मा के साथ एक रूप हो रही है। मैंने सचमुच ज़हर पिया है। मुझे चक्कर आ रहे हैं। (पलंग पर लेटती है।)

वीरसिंह—ओह नर्तकी, तुम मुझे अभी तक नचाती रही। मुझे वैद्य को लाना चाहिए।

(प्रस्थान)

रूपमती—वैद्य ! वैद्य आयेगा मरे हुए को जिंदा करने। ऐसा धन्वंतरि कलियुग में कोई नहीं है। मैं उसी दिन मर जाती जिस दिन बाजबहादुर ने मुझे मार डालना चाहा था। तब बचा लिया इस वीरसिंह ने—अब फिर मुझे बचाना चाहता है। लेकिन....लेकिन....अब....

(आगे बोल नहीं पाती। आँखें पथराने लगती हैं। आदमख़ान हाथ में शराब का प्याला लिए हुए प्रवेश करता है।)

आदमख़ान—आज आदमख़ान जीत गया। बाजबहादुर और शाहँशाह अक़बर दोनों से बाजी मार ले गया। बाजबहादुर अब क्या है—कहाँ है—अब तो आदमख़ान है मालवा का सूबेदार और उसकी बेग़म है रूपमती—(रूपमती की तरफ़ बढ़ता है) उठो, देखो, मैं आ गया। उठो, आज हम दोनों एक ही प्याले में शराब पिएँगे। फिर तुम मदहोश होकर नाचना। (रूपमती को हाथ पकड़कर उठाना चाहता है, पर उठा नहीं पाता, उसके हाथ से शराब का प्याला छूट जाता है।) वह क्या—आँखें फिरी हुई हैं। ओंठें नीले हो गए हैं। तुमने ज़हर खा लिया है ! आदमख़ान को इतना बड़ा आदमी समझा तुमने कि उसके साथ सुहाग-रात मनाने के लिए उसे इतनी तैयारी करनी पड़ी। पिंजरा पड़ा है, तोता उड़ गया।

(हाथ में बंदूक लिए बाजबहादुर का प्रवेश। वह आदमख़ान की तरफ़ ज़रा भी ध्यान नहीं देता। सीधा रूपमती के सामने खड़ा होता है।)

रूपमती ! उठो ! बहादुर औरत की तरह, राजपूतानी की तरह सामने खड़ी होकर मेरी गोली झेलो। मुझे अफ़सोस है, मैं उस दिन तुम्हें मार न सका।

आदमख़ान—पर वह चली गयी है। उसने ज़हर खा लिया है।

बाजबहादुर—(रूपमती के पास बैठता है) इन हाथों में अब भी मद है। (चूमता है) मैं समझता था, तू अपने आपको आदमख़ान को सौंप देगी। मुझे क्या पता था कि तू मुझे इतना प्यार करती है। आज मैं तेरा खून करने आया था—अब यह गोली खाली नहीं जा सकती।

(आदमख़ान शंकित होकर दूर हटता है।)

बाजबहादुर—डरो मत आदमख़ान! मैं निहत्थों पर हथियार नहीं चलाता। (आदमख़ान को कुछ भी कहने या करने का अवसर दिये बिना वह अपने सीने पर गोली मार देता है। इसी वक़्त वीरसिंह वैद्य को लेकर आता है।)

वीरसिंह—मैं आ गया हूँ—वैद्य जी को लेकर आदमख़ान।

आदमख़ान—तोता और मैना दोनों उड़ गये हैं। वीरसिंह आओ इन दीवानों को एक साथ सुला दें। मुहब्बत के आसमान में ये दोनों सितारे कयामत की रात तक चमकेंगे।

(दोनों बाजबहादुर को उठाकर रूपमती के पास सुलाकर चादर उढ़ाते हैं—सिर्फ़ दोनों के मुँह खुले रहते हैं।)

[पटाक्षेप]

बीमार का इलाज

श्री उदयशंकर भट्ट

पात्र

चन्द्रकांत	...	आगरे का एक रईस, जो अंग्रेजी सभ्यता व रहन सहन का प्रेमी है। एकदम भारी-भरकम, उम्र 45 वर्ष।
कांति	...	चन्द्रकांत का बड़ा पुत्र। उम्र लगभग 21-22 वर्ष।
विनोद	...	कांति का समवयस्क मित्र।
शांति	...	कांति का छोटा भाई।
सरस्वती	...	कांति की माँ—अपने पति से सर्वथा भिन्न—दुबली-पतली, पुराने विचारों की।
प्रतिमा	...	कांति की बहन—एकदम मोटी, उम्र 24 वर्ष।

डाक्टर गुप्त, डाक्टर नानकचन्द, वैद्य हरिचंद, बूढ़ा नौकर, मुखिया, पंडित, पुजारी इत्यादि।

बीमार का इलाज

स्थान : आगरा शहर **समय :** सवेरे के आठ बजे

[आगरे में कांति के पिता मि० चन्द्रकांत की कोठी का एक कमरा। कमरे की सजावट एक सम्पन्न परिवार के अनुरूप है। सोफा सेट, कुर्सियाँ, तिपाई इत्यादि सभी वस्तुएँ मौजूद हैं, पर नौकर पर निर्भर रहने तथा रूढ़िवादी गृह स्वामिनी के कारण स्वच्छता और सलीके का अभाव है। दरी पर बिछी हुई चादर काफ़ी मैली है। कांति का मित्र विनोद बिस्तर पर लेटा है। उसे अचानक रात में ज्वर हो गया, लगभग 104 डिग्री। कड़ी काठी होने के कारण वह लापरवाही से कभी उठकर बैठ जाता है और कभी उठकर टहलने लगता है। वह अपने भीतर से यह विचार निकाल देना चाहता है कि उसे ज्वर है। फिर भी ज्वर की तेज़ी उसे बेचैन कर देती है और वह लेट जाता है। कुछ देर बाद कांति 'नाइट ड्रेस' में कन्धे पर तौलिया डाले, चपलियाँ फटफटाता, सीटी बजाता, बायें दरवाज़े से कमरे में आता है।]

कांति—हलो विनोद, अमाँ अभी तक चारपाई से चिपटे हो—आठ बज रहे हैं। क्या भूल गये, आज गाँव जाना है? मैं तो स्वयं देर से उठा, वरना मुझे अब तक तैयार हो जाना चाहिए था। लेकिन तुमने तो कुम्भकर्ण के चाचा को भी मात कर दिया यार! (पास जाकर) क्या बात है? ख़ैर तो है?

विनोद—रात न जाने क्यों बुख़ार हो गया (हाथ फैलाकर) देखो!

कांति—(देह छूकर) ओह, सारी देह अंगारे की तरह दहक रही है।

विनोद—कम्बख़्त बुख़ार कैसे बेमौके आ धमका?

कांति—यार, इस बुख़ार ने तो सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। इलाहाबाद से मैं तुम्हें कितने आग्रह से छुट्टियाँ बिताने के लिए यहाँ आगरे लाया था—सोचा था, कुछ दिन यहाँ घर में आनन्द-मौज करेंगे और फिर खूब गाँव की सैर करेंगे।

विनोद—मालूम होता है, मेरे भाग्य में गाँव की सैर नहीं लिखी है। ये छुट्टियाँ बेकार ही गयीं।

कांति—गाँव का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है। इस दशा में तुम्हारा गाँव जाना असम्भव है सोचता हूँ, मैं भी न जाऊँ; पर जाये बिना काम भी तो नहीं चलेगा। कल चाचा जी शायद मुकद्दमे के लिए बाहर चले जायेंगे; न जाने कब तक लौटें? कहो तो मैं अकेला ही हो आऊँ—इफ यू डोण्ट माइण्ड* !

विनोद—नहीं, नहीं, तुम हो आओ। उन्होंने आग्रह करके बुलाया है, हो आओ। मैं ठीक हो जाऊँगा। कोई बात नहीं!

कांति—तुम्हें कोई तकलीफ़ न होगी। डाक्टर आ जायगा। पिता-माता सभी तो हैं, मैं शाम को ही लौटने का यत्न करूँगा।

---

* यदि तुम बुरा न मानो!

विनोद — नहीं, नहीं, मामूली बुख़ार है, ठीक हो जायगा। जाओ।

(काँति के पिता चन्द्रकांत का प्रवेश)

चन्द्रकांत—(दूर से) किसी को बुख़ार है बेटा कांति? अरे इतनी देर हो गयी. तुम अभी तक गाँव नहीं गये। धूप हो जायगी। धूप, धूल और धुआँ इनमें तीन न सही, दो ही आदमी के प्राण निकालने को काफ़ी हैं। उसपर घोड़े की सवारी—न कूदते बने, न सीधे बैठते। बुख़ार किसे हो गया वेटा!

काँति— बाबूजी, विनोद को रात बुख़ार हो गया। देह तवे की तरह गरम है। डाक्टर को बुलाना है। ऐसे में इसका जाना........

चन्द्रकांत—हैं हैं, विनोद कैसे जा सकता है! और फ़ीवर, जंगल में आग की तरह उद्दण्ड! अभी डाक्टर को बुलाकर दिखा देना होगा। मैंने निश्चय कर लिया है, डाक्टर इस घर में क़दम नहीं रख सकता। उसने प्रतिमा का केस खराब कर दिया था। बुख़ार उससे उतरता ही न था। वह एकदम निकम्मा सिद्ध हुआ। वैसे पूछो तो उस बिचारे का कसूर भी नहीं था, दवा तो उसने एक से एक बढ़िया दी, पर इससे क्या, बुख़ार तो नहीं उतरा। टाइफ़ाइड से छोड़कर चाहे उसका बाप ही क्यों न हो, उसे कुछ-न-कुछ तो उतरना ही चाहिए। डाक्टर गुप्ता ने आते ही उतार दिया। अब तो गुप्ता ही मेरे फ़ैमिली डाक्टर हैं। गुप्ता को बुलाओ! सुखिया, ओ सुखिया, जा ज़रा डाक्टर गुप्ता को तो बुला ला! कहना—वह कांति के

मित्र हैं न, जो प्रयाग से आये हैं, उन्हें बुख़ार हो गया है ; ज़रा चलकर देख लीजिये, बाबूजी ने कहा है। बेटा मान गया मैं तो........

कांति—डॉ. भटनागर में मेरा 'फेथ' कभी नहीं रहा बाबूजी, लेकिन डॉ० नानकचन्द भी कम नहीं है। विनोद को उसे दिखाना ही ठीक होगा। न जाने उसके हाथ में कैसा जादू है। मेरा तो दिन-पर-दिन 'होमियोपैथी' में विश्वास बढ़ता जा रहा है।

चन्द्रकांत—(कमरे में टहलते हुए) मेरे बच्चे, तुम पढ़-लिखकर भी नासमझ ही रहे। बिना अनुभव के समझदार और बच्चे में अंतर ही क्या है। अरे, होमियोपैथी भी कोई इलाज है! चाकलेट या मीठी गोलियाँ न दीं, होमियोपैथिक दवा दे दी! याद रखो, बड़ों की बात गाँठ बाँध लो—जब इलाज करो, ऐलोपैथिक डाक्टर का इलाज करो। 'कड़वी भेषज बिन पिये, मिटे न तन को ताप'। ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं। कहते क्यों नहीं विनोद बेटा?

विनोद—जी!

(करवट बदल लेता है।)

चन्द्रकांत—ये वैद्य-हकीम क्या जाने, हर्र-बहेड़ा और शरबत शोरबे के पंडित!

कांति—मैं चाहता हूँ आप इस मामले में........

चन्द्रकांत—नहीं, यह नहीं हो सकेगा। मैं जानता हूँ विनोद का भला इसी में है।

(सुखिया का प्रवेश)

सुखिया—सरकार वो बाबू आये हैं ।

चन्द्रकांत—अबे कौन बाबू, नाम भी बतायेगा या यों ही....

सुखिया—वही जो उस दिन रात को आये थे ।

चन्द्रकांत—लो और सुनो, गधों से पाला पड़ा है ।

सुखिया—वह बाबू सरकार........

चन्द्रकांत—कह दे, आता हूँ । और मैंने तुझे डाक्टर के पास भेजा था । जल्दी जा ।

(स्वयं भी चले जाते हैं ।)

कांति—तुम घबराना मत । डाक्टर नानकचन्द को बुलाकर लाऊँगा । मेरा ख़याल है, शाम तक बुख़ार उतर जायगा । अच्छा विनोद, देर हो रही है, चलूँ । अभी मुझे बाथ-रूम भी जाना है ।

विनोद – हाँ, हाँ, तुम जाओ । मैंने बुख़ार की कभी परवाह नहीं की है कांति । उतर जायगा अपने-आप । शाम तक लौटने की कोशिश करना ।

कांति—अवश्य, अवश्य, तुम्हारे बिना मेरा मन भी क्या लगेगा ? लेकिन जाना ज़रूरी है । अच्छा, विश यू स्पीडी रिकवरी*

(सीटी बजाता चला जाता है ।)

विनोद—नमस्कार ।

(करवट बदलकर लेट जाता है । कांति की माँ सरस्वती का प्रवेश ।)

---

* तुम्हारे जल्दी स्वस्थ होने की प्रार्थना करता हूँ ।

सरस्वती—(कमरे में घुसते ही) विनोद, क्या बात है? उठो, चाय-वाय तैयार है। कुछ खाओ पियो। (पास जाकर) क्या बात है, खैर तो है? कुछ तबीयत खराब है क्या? (पलंग के पास जाकर विनोद को छूकर) हाय-हाय देखो तो कितना बुख़ार है! मुँह ईंगुर-सा लाल हो रिया है बिचारे का—घबराओ मत बेटा, मैं अभी वैद हरिचन्द को बुलाती हूँ। देखकर दवा दे जायँगे—बड़े काबिल वैद हैं, विनोद। ज़रा कपड़ा ओढ़ लो न। (उढ़ाती है) जैसा कांति वैसा ही तू। मेरे लेखे तो दोनों एक हो। क्या सिर में कुछ दर्द है? (हाथ फेरकर) क़ब्ज़ी होगी। अभी ठीक हो जायगी। सुखिया, ओ सुखिया। न जाने कहाँ मर गया। इन नौकरों के मारे तो नाक में दम हो गया है। अरे शांति, ओ शांति। (शांति आता है।) देख तो बेटा, जा हरिचन्द वैद को बुला ला। देखकर दवा दे जाएँगे। भइया वैद हो तो ऐसा हो........

विनोद—माता जी, बाबूजी ने डाक्टर गुप्ता को बुलाया है। शायद कांति ने डाक्टर नानकचन्द के लिए कहा है।

सरस्वती—लो और सुनो, इनके मारे भी मेरा नाक में दम है। उस मरे डाक्टर को न कुछ आवे है, न जावे है। न जाने क्यों डाक्टर गुप्ता के पीछे पड़ रहे होंगे। क्या नाम है उस मरे भटनागर का? इन दोनों ने तो छोरी को मार ही डाला था। वह तो कहो, भला हो इन वैद जी का, बचा लिया। जा बेटा शांति, जा तो सही जल्दी।

शांति—जाऊँ हूँ माँ।

(चला जाता है।)

सरस्वती—अरी प्रतिमा, ओ प्रतिमा (दूर से ही आवाज़ आती है—'हाँ माँ, क्या है ? ') देख ज़रा मन्दिर में पंडित जी पूजा कर रहे हैं। उनसे कहियो, ज़रा इधर होते जाएँ। और देख, उनसे कहियो, मार्जन का जल लेते आवें, विनोद भइया बीमार हैं। मैंने घर में ही मन्दिर बनवाया है बेटा !

विनोद—(उत्सुकता से करवट बदलकर) पंडितजी का क्या होगा यहाँ माँ ?

सरस्वती—बेटा, ज़रा मार्जन कर देंगे। अपने वो पंडितजी रोज़ पूजा करने आवें हैं। मार्जन कर देंगे। सारी अला-बला दूर हो जायगी। तुम पढ़े-लिखे लोग मानो या न मानो, पर मैं तो मानूँ हूँगी भइया! पिछले दिनों प्रतिमा बीमार थी। समझ लो पंडितजी के मार्जन से ही अच्छी हुई। मैंने कथा में एक बार सुना था—बुख़ार-उखार तो नाम के हैं, असली तो यह ग्रह-भूत ही हैं जो बुख़ार बनकर आजायँ हैंगे। सिर दबा दूँ क्या बेटा? जैसे कांति वैसे तुम। तब तक न हो थोड़ा-सा दूध पी लो। अरी मिसरानी, ओ मिसरानी! (दूर से आवाज़ 'आयी बहूजी') अरी देख, थोड़ा दूध तो गरमाकर लाइयो।

विनोद—दूध तो मैं नहीं पीऊँगा माताजी।

सरस्वती— (चिल्लाकर) अच्छा रहने दे। (विनोद से) क्या हर्ज है, थोड़ी देर बाद सही। ज़रा ओढ़ लो, मैं अभी आयी। (जैसे ही जाने लगती है, वैसे ही मार्जन का जल, दूर्वा लेकर पंडितजी कमरे में आते हैं। सरस्वती पंडितजी से) देखो

पंडितजी, तुम्हारी पूजा से प्रतिमाजी उठी थी। याद है न ? ये मेरे कांति का मित्र है। देखो एक साथ पढ़े हैं। तुम्हें नहीं मालूम आजकल वह आया है न! चाचा ने बुलाया है, आज गाँव जा रिया है। विनोद भी जा रिया था, पर इस बिचारे को बुख़ार आ गया। ज़रा मंत्र पढ़कर मार्जन कर दो।

पंडितजी—क्यों नहीं बहू जी, मन्त्र का बड़ा प्रभाव है। पुराने समयों में दवा-दारू कौन करे था। बस, मन्त्राभिसिक्त जल से मार्जन करा, कि बीमारी गयी। तुम तो बीमारी की कहो हो, यहाँ तो मरे जी उठते थे मरे, जिनके जीने का कोई सवाल ही नहीं उठे था (आँखें मटकाकर) हाँ, ऐसा था मन्त्र का प्रभाव।

सरस्वती—सच कहो हो पंडितजी, ज़रा कर तो दो मार्जन। वैसे मैंने अपने उन वैदजी को भी बुलाया है। शांति गया है बुलाने।

पंडितजी—तभी, तभी, मैं भी कहूँ आज शांति बाबू नहीं दिखायी दिये। ठीक है, एक शत्रु पर जब दो पिल पड़ें तो वह कैसे बचकर जायगा। अच्छा, ये कांति बाबू के दोस्त हैं! अच्छा है भइया, खुश रहो, खूब पढ़ो-लिखो, धर्म में श्रद्धा रखो—हम तो ये कहे हैं। क्यों बहू जी ?

सरस्वती—हाँ और क्या, पर आजकल के ये पढ़े-लिखे कुछ मानें तब न ? तुम्हारे उन्हीं को देख लो, कुछ दिनों से डाक्टरों के चक्कर में पड़े हैं। मैं कहूँ हूँ, अपने बुजुर्गों की दवाइयाँ क्यों छोड़ी जायँ ? जब ये डाक्टर नहीं थे, तब क्या कोई अच्छा नहीं

होवे था ? सभी ठीक होयँ थे अब न जाने कैसा ज़माना आ रिया है ।

पंडितजी—ज़माना बड़ा ख़राब है बहू जी ! देवता, ब्राह्मण और गौ पर तो जैसे श्रद्धा ही न रही ।

सरस्वती—अच्छा पंडितजी, मार्जन कर दो, मैं अभी आयी ।

(चली जाती है । पंडित मंत्र पढ़कर विनोद के उपर बार-बार जल छिड़कता है ; इसी समय डाक्टर को लेकर चन्द्रकांत प्रवेश करते हैं ।)

चन्द्रकांत—हैं हैं, अरे क्या हो रहा है ? (पास जाकर) बस करो, ब्राह्मण देवता, बस करो, (ज़ोर से) अरे, तुम क्या समझते हो इसे भूत है ? रहने दो । न जाने इन औरतों को कब बुद्धि आयेगी । अरे, डाक्टर गुप्ता, आप इधर बैठिये न ।

पंडितजी—बस, थोड़ा ही मार्जन रह गया है बाबूजी ।

(मार्जन करता है ।)

डाक्टर गुप्ता—महाराज, क्यों मारना चाहते हो बीमार को । निमोनिया हो जायगा, निमोनिया । (पंडित डाक्टर के कहने पर भी मार्जन किये ही जाता है ।) अटर न्यूसेन्स, मिस्टर चन्द्रकान्त !

चन्द्रकांत—(कड़क कर) बस रहने दो। सुनते नहीं डाक्टर गुप्ता क्या कह रहे हैं ? निमोनिया हो जायगा ।

पंडितजी—जैसी आपकी इच्छा । मेरा तो विचार है, विनोद बाबू का इतने से ही बुख़ार उतर गया होगा ।

(चला जाता है ।)

डाक्टर गुप्ता—मंत्रों से बीमारी अच्छी हो जाती तो हम क्या भाड़ झोंकने को इतना पढ़ते ! न जाने देश का यह अज्ञान कब दूर होगा ! (डाक्टर खाट के पास खड़ा होकर विनोद को देखता है।) बुख़ार तेज है। जीभ दिखाइए। पेट दिखाइए। (थर्मामीटर लगाकर नाड़ी की गति गिनता है, फिर थर्मामीटर देखकर) 104 डिग्री। कोई बात नहीं, ठीक हो जायगा। दवा लिखे देता हूँ, डिस्पेन्सरी से मँगा लीजिएगा। दो-दो घण्टे बाद। पीने को केवल दूध। यू विल बी आलराइट विदइन टू आर थ्री डेज़। (चन्द्रकान्त की ओर देखकर)

ठीक हो जायँगे। बेचैनी मालूम हो, बुख़ार न उतरे तो बरफ़ रखियेगा सिर पर।

चन्द्रकांत—ठीक है। (विनोद से) घबराने की कोई बात नहीं। ठीक हो जाओगे, मामूली बुख़ार है। मैं अभी दवा लाता हूँ।

डाक्टर गुप्ता—मैं शाम को भी आकर देख लूँगा। अच्छा मिस्टर चन्द्रकांत !

(एक तरफ़ से दोनों चले जाते हैं। दूसरी तरफ़ से सरस्वती आती है।)

सरस्वती—क्या हुआ, पंडितजी चले गये ? मार्जन कर गये ?

विनोद—(चुपचाप पड़ा रहता है।)

सरस्वती—(देह छूकर) अब तो बुख़ार कम । देखा मंत्र का प्रभाव, मार्जन करते ही फरक पड़ गया। (वहीं से चिल्लाकर) प्रतिमा ओ प्रतिमा, सुनियो री ज़रा।

प्रतिमा—(वहीं से चिल्लाती हुई) क्या है ?

सरस्वती—देख तो पंडित जी गये क्या। बुख़ार तो कुछ उतरा दिखायी दे है। उनसे कह ज़रा और थोड़ी देर मार्जन कर दें।

विनोद—नहीं रहने दीजिए। वे मार्जन कर गये हैं।

सरस्वती—क्या हर्ज है, अपने घर के ही पंडित तो हैं। आधी रात को बुलाओ तो आधी रात को आवें। मखौल है क्या बीस रुपये महीना, तीज-त्यौहार पर आटा सीधा अलग। तीस तो पड़ी जाये हैंगे। ऊपर से भी आमदनी हो जाय हैगी।

(प्रतिमा आती है।)

प्रतिमा—पंडितजी तो गये, अम्मा।

विनोद—माताजी, मार्जन रहने दीजिए। काफ़ी हो गया।

(चुप हो जाता हैं। वैद हरिचन्द शान्ति के साथ आते हैं।)

सरस्वती—लो, वैद जी आ गये। आओ वैद जी।

हरिचन्द—क्या बात है बहू जी? सवेरे ही शान्ति जो पहुँचा तो मैं डर गया, क़ायदे से किसी आदमी को देखकर वैद्य को खुश होना चाहिए, परन्तु मेरी आदत और ही है, मैं तो चाहता हूँ अपनी जान-पहचान के लोग सदा प्रसन्न रहें। हाँ, क्या बात है?

(संकेत से पूछता है।)

सरस्वती—ये कांति के साथ पढ़े है वैद जी। छुट्टियों में उसी के संग सैर को आया, सो विचारा बीमार पड़ गया! ज़रा देखो तो—

(जैसे ही वैद्य नाड़ी देखने को बढ़ता है वैसे ही विनोद बोल उठता है।)

विनोद—डाक्टर गुप्ता भी देख गये हैं, माता जी।

हरिचन्द—फिर मेरी क्या आवश्यकता है, मेरा काम ही क्या है (एकदम दूर जा खड़ा होता है।) मैं ऐसे रोगियों का इलाज नहीं करता। उसी डाक्टर का इलाज करो। और मैं तो राजा भूपेन्द्रसिंह के यहाँ जा रहा था। सोचा, बाबू जी तो बुलाया है तो जाना ही चाहिए।

(लौटने लगता है।)

सरस्वती—वैद जी, उनकी भली चलायी। आने दो डाक्टर गुप्ता को। इलाज तो तुम जानो, तुम्हारा ही होगा। मैं क्या कान्ति के मित्र को और बीमार होने दूँगी? नहीं तुम्हें ही इलाज करना होगा। तुम्हारी ही दवा दी जायगी। चलो देखो। उन मरों ने प्रतिमा को तो मार ही दिया था। तुम्हीं ने तो बचाया। वाह, यह कैसे हो सके हैगा? इस घर में डाक्टरी नहीं चलेगी।

हरिचन्द—(पास जाकर विनोद को देखते हुए) हाँ, सोच लो। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो दवा देने के लिए भागते फिरें। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, बाबू चन्द्रकान्त डाक्टरों के चक्कर में पड़ गये हैं, जो अंग्रेज़ी दवाइयाँ देकर लोगों को मार देते हैं। (व्यंग्य से हँसकर) ये डाक्टर भी अजीब हैं। देशी बीमारी और अंग्रेज़ी दवाई! न देश, न काल! (विनोद को देखकर) पेट ख़राब है। काढा देना होगा। एक गोली दूँगा, काढ़े के साथ दे देना। बुख़ार पचेगा और ठीक हो जायगा।

सरस्वती—(उछलकर) मैं कह नहीं रही थी कब्जी से बुख़ार है। कहो विनोद, क्या कहा था? घोड़ी नहीं चढ़े तो

क्या बरात भी नहीं देखी ! बहुत-सी बीमारी का इलाज तो मैं खुद ही कर लूँ हूँगी ।

हरिचन्द—बीमारी पहचानने में कर तो ले कोई मेरा मुक़ाबिला । बड़े-बड़े सिविल सर्जन मुझे बुलाते हैं । अभी उस दिन राजा के यहाँ सारे शहर के डाक्टर इकट्ठे हुए, किसी की समझ में नहीं आ रहा था – क्या बीमारी है । मुझे बुलाया गया, देखते ही मैंने झट से कह दिया 'यह बीमारी' है ।

सरस्वती – (वैद्य की तरफ़ विश्वास से देखकर) फिर मान गये ।

हरिचन्द— मानते न तो क्या करते ? वह सिक्का बैठा कि शहर भर में धूम मच गयी । अब रोज़ जाता हूँ ।

सरस्वती—आराम आ गया फिर ? भला क्यों न आराम आता । हमारे वैद जी क्या कोई कम हैं ।

हरिचन्द— अभी देर लगेगी । पुराना रोग है । ठीक हो जायगा ।

सरस्वती—अरे, तो आराम नहीं आया ? भला कौन बीमार है ?

हरिचन्द— उनकी बड़ी लड़की ।

सरस्वती—(आश्चर्य) वह गप्पो क्या वैद जी ? बड़ी अच्छी लड़की है बिचारी । राम करे अच्छी हो जाय !

हरिचन्द—जी हाँ । अच्छा चला । काढ़ा और गोली भेज दूँगा । पहले बुख़ार पचेगा, फिर उतरेगा । उस दिन

राजा साहब बोले—वैद्य जी, हमने आपको अपने परिवार का चिकित्सक बना लिया है ।

सरस्वती—सो तो है ही। तुम्हें क्या कमी है ! मैं उनसे यही तो कहूँ हूँ कि हमें तो बैद्य जी की दवा लगे है। पर न जाने......

हरिचन्द—सस्ती दवा, थोड़ी फीस, देशकाल के अनुसार। और मैं क्या डाक्टरी नहीं जानता ? मैंने भी तो मेटीरिया मेडिका, सर्जरी पढ़ी है ।

सरस्वती—सो तो है ही वैद जी ।

(सरस्वती वैद्य के साथ एक द्वार से निकल जाती है। दूसरे से चन्द्रकांत सुखिया के साथ दवा लेकर आते हैं।)

चन्द्रकांत—लो बेटा विनोद, एक खुराक पी लो। अभी ठीक हो जाओगे ।

(विनोद को उठाकर दवा पिलाता है।)

विनोद—अभी वैद्य हरिचन्द्र भी देखने आये थे ।

चन्द्रकांत—(चौंककर) आये थे ? वह मूर्ख वैद्य ! वह क्या जाने इलाज करना। इन औरतों के मारे नाक में दम है साहब। दवा तो नहीं पी न ? अच्छा दो-दो घण्टे बाद दवा लेते रहना। पीने को दूध, बस और कुछ नहीं। मैं काम से जा रहा हूँ (जाते-जाते सुखिया से) देख, तू यहाँ बैठ। बाबू की देख-भाल करना, भला ।

सुखिया—जी सरकार ।

(चन्द्रकांत चला जाता है।)

सुखिया —बाबू, मैं तो झाड़-फूंक में विश्वास करता हूँ। हाथ फेरते ही बुख़ार उतर जावेगा। यह ओझा से पानी लाया हूँ। दो घण्टे में बुख़ार क्या उसका नाम भी न रहेगा। मैंने तो छोटे बाबू से सबेरे ही कहा -कहो तो ओझा को बुलाऊँ, पर वे न माने। कहा, तू पागल है सुखिया। मैं चुप हो रहा। क्या करता, ग़रीब आदमी ठहरा। अभी दो घण्टे में बुख़ार का नाम भी न रहेगा बाबू!

विनोद—अरे कहीं बुख़ार भी झाड़-फूंक से गया है सुखिया! मैं तो गाँव का रहनेवाला हूँ। मैंने तो कहीं नहीं देखा कि बुख़ार झाड़-फूंक से उतरता है। ज़रा पानी तो दो।

सुखिया—(दरी पर बैठकर तमाखू खाता हुआ) शर्त बद लो शर्त! और वह ओझा तो वैदगी भी जाने है। हमारे यहाँ तो कोई भी और कहीं नही जाय हैगा। वैसे तुम्हारी मर्ज़ी। पानी पियोगे? देता हूँ। यही पानी पी लो न। किसी को मालूम भी न होगा। न दवा, न दारू।

(पानी देता है)

विनोद—(पानी पीकर) नहीं सुखिया, ओझा की कोई आवश्यकता नहीं है। कांति गया क्या?

सुखिया—गये होंगे। घोड़ी तो दो दिन से खड़ी थी। अब तो पहुँचनेवाले होंगे।

(इसी समय सरस्वती कटोरे में काढ़ा और दूसरे हाथ में दवा की गोली लेकर आती है।)

सरस्वती—लो बेटा विनोद, ज़रा जी कड़ा करके पी तो लो। ऊपर से यह गोली खा लो। नहीं-नहीं, पहले गोली फिर काढ़ा। मैं भी कितनी भुलक्कड़ हूँ।

विनोद—दवा तो अभी मैं पी चुका हूँ, माताजी। बाबूजी पिला गये हैं।

सरस्वती—क्या कहा, दवा दे गये हैं? कोई हर्ज नहीं, फायदा तुम्हें इसी दवा से होगा। यह काढ़ा ऐसा-वैसा नहीं है। एकदम लाभ होगा और मेरा तो तजुर्बा है। प्रतिमा मर रही थी, इन्हीं वैदजी ने उसे जिलाया। लो, पी तो लो।

(कटोरा देती है। विनोद चुपचाप काढ़ा पीने लगता है, इसी समय चन्द्रकान्त लौट आते है। विनोद को दवा पीते देखकर।)

चन्द्रकांत—यह क्या हो रहा है विनोद?

सरस्वती—दवा दे रही हूँ और क्या?

चन्द्रकांत—तुम पागल हो गयी हो। विनोद डाक्टर गुप्ता की दवा पी चुका है। उसे और दवा देना...

सरस्वती—सुनो मैं यह नहीं मानती। मैं डाक्टर की दवा और डाक्टर—दोनों को व्यर्थ समझती हूँ। मालूम नहीं है प्रतिमा को इस डाक्टर ने मार ही डाला था, वह तो कहो वैद हरिचन्द ने बचा लिया।

चन्द्रकांत—तुम मूर्ख हो। कहीं डाक्टर मूर्ख होता है? मूर्ख हैं ये वैद्य, जो कुछ नहीं जानते। प्रतिमा को तो डाक्टर गुप्ता से लाभ हुआ था।

सरस्वती—बिलकुल ग़लत। दवा तो मैं देती थी। मुझे मालूम है, किससे लाभ हुआ उसे।

चन्द्रकांत—विनोद, दवा मत पियो, हर्गिज़ न पियो। वैद्यों की दवा पीना मृत्यु को बुलाना है।

सरस्वती—बेटा, यह काढ़ा पीना बहुत आवश्यक है। इसे बिना पिये तुम्हें लाभ ही न होगा। इन्हें कहने दो। ये सदा ऐसा ही कहते रहे हैं। यदि इन वैद जी की दवा न होती तो प्रतिमा कभी की मर गयी होती।

चन्द्रकांत—(कटोरा विनोद के हाथ से लेकर) इसे रहने दो। न जाने संसार से मूर्खता कब जायगी! लो इसे पियो।

सरस्वती—नहीं, यह नहीं हो सके हैगा। तुम्हें मालूम है वैद हरिचन्द की दवा से प्रतिमा मरते-मरते बची है। पराया लड़का है बिचारा, कांति के साथ सैर को आया है। डाक्टरों के चक्कर में पड़ा और बस। मैं हा-हा खाती हूँ, इसे डाक्टर की दवा मत दो। रहने दो विनोद—क्या मैं इस घर की कोई भी नहीं हूँ?

चन्द्रकांत—क्या तुम यह नहीं मानतीं कि औरतों में बुद्धि थोड़ी होती है। मेरा कहा मानो और विनोद को डाक्टर की दवा पीने दो। अच्छा हो जायगा—जल्दी अच्छा हो जायगा, सरस्वती!

सरस्वती—देखो जी, क्या नाम है मुझे ही सदा दबाते रहते हो! इस घर में कोई भी मेरी नहीं सुने हैगा। (एकदम रोकर) दो और गाली दो, मार लो। (काढ़ा, गोली ज़मीन पर रखकर रोने लगती हैं। आँचल से आँसू पोंछती हुई) जैसे मैं

इस घर की कोई भी नहीं हूँगी। ई ई ई ई न अच्छी बात सुने हैंगे न समझ की बात ई ई ई ई!

(रोती हैं।)

चन्द्रकांत—(हैरान होकर) अरे तो भगवान, मैंने तुझे गाली कब दी। मैंने तो यही कहा है कि डाक्टर की दवा से विनोद अच्छा हो जायगा।

सरस्वती—(रोते हुए) ई ई ई और गाली किसे कहे हैंगे। मुझे मरी को मौत भी तो नहीं आवे है। एक दफ़े मर जाऊँ तो रोज़-रोज़ का झंझट तो जाय। (रोकर) वैद हरिचन्द ने ज़हर तो नहीं दिया है, काढ़ा और गोली ही तो दी है। फिर न जाने उतनी ज़िद क्यों है। मैं क्या कोई इसकी दुश्मन हूँ (हिचकी भरकर) अच्छा करा तो बुरा होय है। (अकड़कर) मैं साफ कह दूँ हूँ, विनोद पियेगा तो काढ़ा ही, डाक्टर की दवा हरगिज़ नहीं पियेगा।

चन्द्रकांत—मैं कहता हूँ विनोद डाक्टर की दवा पियेगा।

सरस्वती—मैं कहती हूँ वैद विनोद की दवा पियेगा।

चन्द्रकांत—तुम मूर्ख हो, तुम्हें कोई कहाँ तक समझावे। मैंने दुनिया देखी है। मैं जानता हूँ आजकल किसकी दवा से फ़ायदा होता है। देखो ज़िद न करो।

सरस्वती—(अड़ती हुई) देखो मेरी सुनो, घर के मामले में तुम्हें बोलने का कोई अधिकार नहीं है। विनोद अगर दवा पियेगा तो वैद की। वैद जी अभी तो कह गये हैं कि विनोद का बुख़ार ठीक हो जायगा। समझे कि नहीं।

चन्द्रकांत—नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं। विनोद दवा पियेगा तो डाक्टर की। नहीं तो कोई दवा न पियेगा।

विनोद—इससे तो अच्छा यह है कि मैं कोई दवा न पीऊँ।

सरस्वती—यह कैसे हो सके हैगा भइया, मैं मर जाऊँ। इससे तो अच्छा है भगवान मुझे उठा लें। अब इस घर में मेरी कोई ज़रूरत नहीं है। हाय राम, दूसरों के सामने भी मेरा अपमान हो रिया है और तुम देख रहे होगे। (क्रोध से) मैं तो अपना सिर फोड़ लूँगी। इस घर में अब मेरी ज़रूरत ही क्या है? ले, पी विनोद!

चन्द्रकांत—(लाचारी से) अच्छा भाई, काढ़ा पी लो, मुझे क्या। अजब परेशानी में जान है इन औरतों के मारे! तुम लोग कभी कोई नयी बात नहीं सीखोगी। कभी दूसरे का कहना न मानोगी। कभी भला-बुरा न सोचोगी (अकड़कर) डाक्टर मेरा चाचा तो नहीं लगता, लेकिन याद रखो विनोद, जल्दी अच्छा होने के लिए यह आवश्यक है कि तुम डाक्टर की दवा पियो। अच्छा चलो, विनोद के ऊपर ही फैसला रहा। क्यों विनोद?

सरस्वती—देखा, लगे उसे बहकाने। वह क्या जाने बेचारा। मैं कहूँ हूँ एक दिन वैद्य की दवा देकर तो देखो। लो बेटा, पियो तो सही काढ़ा।

चन्द्रकांत—और मैं दुश्मन हूँ?

सरस्वती—तुम क्यों दुश्मन होते। राम करे उसके दुश्मन रहे ही न! पियो तो सही।

विनोद—(दोनों के हाथ जोड़कर) यदि आप मुझे मेरे हाल पर छोड़ दें तो मैं शाम तक ठीक हो जाऊँगा।

दोनों—(चिल्लाकर) यह कैसे हो सकता है। दवा तो तुम जानो, पीनी ही पड़ेगी।

विनोद—नहीं-नहीं, आप क्षमा करें बाबूजी, मैं अंग्रेजी दवा पीने का आदी नहीं हूँ।

सरस्वती—(चिल्लाकर) मैंने कहा था न कि विनोद को वैद्य जी की दवा से ही आराम होगा।

विनोद—नहीं, मैं वैद्य की दवा भी न पीऊँगा। मैं वैसे ही ठीक हो जाऊँगा, माताजी।

(कांति प्रवेश करता है।)

कांति—आइये डाक्टर साहब, मैंने कहा—(पिता को देखकर) विनोद को ज़रा डाक्टर साहब को भी दिखा दूँ। (विनोद उठकर जाने लगता है।) अरे विनोद, तुम तो जा रहे हो। क्या बात है? सुनो देखो डाक्टर साहब आये हैं। सुनो विनोद!

विनोद—मेरा बुख़ार घूमने से उतरता है, कांति। मैं घूमने जा रहा हूँ।

(जाता है।)

डाक्टर—ही इज सफरिंग परहेप्स फ्रम किंग्स डिसीज़—इनको नींद में घूमने की बीमारी मालूम होती है।

कांति—(चिल्लाकर) बिचारा विनोद! मैं जाता हूँ। शायद वह अपने आपे में नहीं है।

चन्द्रकांत—लेकिन डाक्टर ने तो बुखार की दवा दी है।

सरस्वती—और वैद जी ने अपच का काढ़ा, डाक्टर साहब।

सुखिया—फ़ायदा तो मेरे लाये पानी से हुआ है, मैं ओझा से फुँकवा कर पानी लाया था।

डाक्टर—मिस्टर कांति, मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम होते हैं; चलो।

सब—(चिल्लाकर) ओः डाक्टर!

[पर्दा गिरता है।]

सूखी डाली

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

पात्र

पुरुष		स्त्री
दादा	...	बेला (छोटी बहू)
कर्मचन्द	...	छोटी भाभी (बेला की सास, इन्दु की माँ)
परेश	...	मँझली भाभी
भाषी	...	बड़ी भाभी
मल्लू	...	मँझली बहू
		बड़ी बहू,
		रजवा,
		पारो

सूखी डाली

पहला दृश्य

[मानव प्रगति के इस युग में जब व्यक्तिगत-स्वतंत्रता को अराजकता की हद तक महत्व दिया जाता है और तानाशाही को 'सभ्य' समाज में अत्यन्त निन्दनीय माना जाता है, दादा मूलराज अपने समस्त कुटुम्ब को एक यूनिट (unit) बनाये, उसपर पूर्ण रूप से अपना प्रभुत्व जमाये, उस महान् वट की भाँति अटल खड़े हैं, जिसकी लम्बी-लम्बी डालियाँ उनके आँगन में एक बड़े छाते की भाँति धरती को आच्छादित किये हुए, अगणित घोंसलों को अपने पत्तों में छिपाये, वर्षों से तूफानों और आँधियों का सामना किये जा रही हैं ।

वर्षों इस वट की संगति में रहने के कारण दादा वट ही की भाँति महान् दिखाई देते हैं । आयु की 72 सर्दियाँ देख लेने पर भी उनका शरीर अभी तक नहीं झुका और उनकी सफ़ेद-दाढ़ी वट की लम्बी-लम्बी दाढ़ियों की भाँति उनकी नाभि को छूती हुई मानों धरती को छूने का प्रण किये हुए है ।

दादा का बड़ा लड़का 1914 के महा-युद्ध में सरकार की ओर से लड़ते-लड़ते काम आया था । इसके बदले में सरकार ने दादा को एक मुरब्बा ज़मीन दी थी । किंतु दादा सरकार की इस कृपा ही पर संतुष्ट नहीं रहे । अपने साहस, परिश्रम, निष्ठा, दूरदर्शिता और रुसूख से उन्होंने एक के दस मुरब्बे बनाये । उनके दो बेटे और पोते, जमीन, फ़ार्म, डेयरी और चीनी के उस कारख़ाने के काम की देखभाल करते हैं, जो उन्होंने हाल ही में अपनी ज़मीन में लगाया है । सबसे छोटा पोता

अभी-अभी नायब तहसीलदार होकर इसी कस्बे में लगा है। और कुछ ही दिन हुए उसका विवाह लाहौर के एक प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न कुल की सुशिक्षित लड़की से हुआ है।

उनके छोटे पोते परेश का नायब तहसीलदार और उनकी छोटी पतोहू का सुशिक्षित होना, अपने में दो महत्वपूर्ण बातें हैं। पहली से सरकारी हलकों में उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जाने की सम्भावना है; गाँव में उनका और भी आदर होने लगा है, किन्तु साथ ही दूसरी से उनके परिवार के लिये संकट भी उपस्थित हो गया है। उनकी तीनों बहुएँ (जो घर में बड़ी भाभी, मँझली भाभी और छोटी भाभी के नाम से पुकारी जाती हैं, सीधी-सादी महिलाएँ है। उन सब में उनकी पोती इन्दु ही (जिसने प्रायमरी स्कूल में बड़ी सफलतापूर्वक शिक्षा पायी है) सबसे अधिक पढ़ी-लिखी समझी जाती है। घर में उसकी चलती भी खूब है और दादा अपनी इस पोती से प्यार भी बहुत करते हैं; किन्तु इस ग्रेजुएट छोटी पतोहू के आने से (जो घर में छोटी बहू के नाम से पुकारी जाती है) कुटुम्ब के इस तालाब में इस प्रकार लहरें-सी उठने लगी हैं जैसे स्थिर पानी में बड़ी-सी ईंट गिरने से पैदा हो जाती हैं।

पर्दा इमारत के बरामदे में खुलता है। वास्तव में यह बरामदा घर की स्त्रियों की रांदेवू (Rendezvous) सम्मिलन-स्थल है। दिन भर इसमें कोलाहल मचा रहता है। कभी घर की स्त्रियाँ यहाँ धूप लेती हैं; कभी चरखे कातती हैं; कभी गप्पें उड़ाती हैं; कभी लड़ती-झगड़ती हैं और कुछ न हो तो स्नानागार में पड़े कपड़े ही धोया करती हैं। यह स्नानागार बाहर के अहाते में है। दायीं दीवार के कोने में जो दरवाज़ा है, उसके साथ ही बाहर को। रसोई आदि से निबट कर दोपहर के बाद, घर की दो चार स्त्रियाँ प्रायः रोज़ वहाँ कपड़े धोया करती हैं और निरंतर 'थप-थप' 'धप-धप' की ध्वनि इस बरामदे में गूंजा करती है।

सामने दीवार के बायें कोने में एक छोटी-सी गैलरी है जिसमें (दोनों ओर आमने-सामने) पहले मँझली बहू और बड़ी बहू के कमरे हैं (जिनकी खिड़कियाँ बरामदे में खुलती हैं) फिर मँझली भाभी और बड़ी भाभी के। छोटी भाभी का कमरा (जो इन्दु की माँ और छोटी बहू बेला की सास) दायीं ओर है। छोटी बहू का कमरा ऊपर की छत पर है और बायीं दीवार में सीढ़ियाँ बनी हैं, जो ऊपर को जाती हैं।

सामने की दीवार के साथ गैलरी के इधर को दो तख्त बिछे हैं। दो एक चारपाइयाँ दीवार के साथ खड़ी हैं। एक पुराने फैशन की बड़ी आराम कुर्सी भी सामने की दीवार के साथ लगी हुई है।

दोपहर होने में अभी काफी देर है। अतः बरामदे में अपेक्षाकृत निस्तब्धता है; केवल गैलरी से स्त्रियों के जल्दी-जल्दी बातें करने की आवाज़ आ रही है। पर्दा उठने के कुछ क्षण पश्चात् इन्दु तेज़-तेज़ गैलरी से निकलती है और बिफरी हुई-सी दायीं तरफ़ के तख्त पर बैठ जाती है। उसके पीछे-पीछे बड़ी बहू शान्त स्वभाव से चलती हुई आती है। इन्दू की भृकुटी चढ़ी है और बड़ी बहू शान्त और गम्भीर है।]

बड़ी बहू—(इन्दु के कन्धों पर अपने दोनों हाथ रखते हुए) आख़िर कुछ कहो भी। क्या कह दिया छोटी बहू ने ?

इन्दु—(चुप)

बड़ी बहू—क्या कह दिया उसने जो इतनी बिफरी हुई हो ?

इन्दु—(क्रोध से) और क्या ईंट मारती।

बड़ी बहू—कुछ कहो भी........

इन्दु—मेरे मायके में यह होता है, मेरे मायके में यह नहीं

होता (हाथ मटकाकर) अपने और अपने मायके के सामने तो वह किसीको कुछ गिनती ही नहीं। हम तो उसके लिए मूर्ख, गँवार और असभ्य हैं।

बड़ी बहू—(आश्चर्य से) क्या........

इन्दु—बैठक के बाहर मिश्रानी खड़ी रो रही थी। मैंने पूछा तो पता चला कि बहू रानी ने उसे काम से हटा दिया है।

बड़ी बहू—(उसी आश्चर्य से) काम से हटा दिया है! भला क्या दोष था उसका?

इन्दु—दोष यह था कि उसे काम करना नहीं आता।

बड़ी बहू—(स्तम्भित) काम करना नहीं आता!

इन्दु—उस बेचारी ने कहा भी कि मैं दस पाँच दिन में सब कुछ सीख जाऊँगी। भला कै दिन हुए हैं मुझे आपका काम करते? किन्तु बहू रानी ने न माना। झाडन उन्होंने उसके हाथ से छीन लिया और कहा कि हट तू, मैं सब कुछ स्वयं कर लूँगी। अभी तक इतना तो सलीका नहीं कि बैठक कैसे साफ़ की जाती है, पाँच दस दिन में तू क्या सीख जायगी?

बड़ी बहू—सलीका नहीं........?

इन्दु—मैंने जाकर समझाया कि भाभी दस साल से यही मिश्रानी घर का काम कर रही है। घर भर की सफ़ाई करती है, बर्तन मलती है, कपड़े धोती है। जाने तुम्हारा कौन-सा ऐसा काम है जो इससे नहीं होता। और फिर मैंने समझाया कि भाभी, नौकर से काम लेने की भी तमीज़ होनी चाहिए।

बड़ी बहू—हाँ और क्या........

इन्दु—झट से बोली, 'वह तमीज़ तो सब आप लोगों को है', मैंने कहा, 'तुम तो लड़ती हो। मैं तो सिर्फ़ यह कहना चाहती थी कि नौकर से काम लेने का ढंग भी होता है।' इस पर तुनक कर बोलीं, 'और वह ढंग मुझे नहीं आता, मैंने नौकर जो यहीं आकर देखे हैं।' फिर कहने लगी, 'काम लेने का ढंग उसे आता है, जिसे काम की परख हो। सुबह-शाम झाड़ू देने मात्र से कमरा साफ़ नहीं हो जाता। उसकी बनावट-सजावट भी कोई चीज़ है। न जाने तुम लोग किस तरह इन फूहड़ नौकरों से गुज़ारा कर लेते हो। मेरे मायके में तो ऐसी गँवार मिश्रानी दो दिन छोड़, दो घड़ी भी न टिकती।'

बड़ी बहू—कहीं उसने ये सब बातें?

इन्दु—और कैसे कही जाती हैं—जब से आयी है यही तो सुन रहे हैं—नौकर अच्छे हैं तो उसके मायके में, खाना-पीना अच्छा है तो उसके मायके में, कपड़े पहनने का ढंग आता है तो, उसके मायकेवालों को, हम तो न जाने कैसे जी रहे हैं! (नाक भौं चढ़ाकर) यहाँ के लोगों को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना कुछ भी नहीं आता। हमारे नौकर गँवार, हमारे पड़ोसी गँवार, हम स्वयं गँवार........

बड़ी बहू—(चकित विस्मित सिर्फ़ सुनती है।)

इन्दु—मैंने भी कह दिया—'क्या बात है भाभी तुम्हारे मायके को? एक नमूना तुम्हीं जो हो। एक मिश्रानी भी ले आतीं तो हम गँवार भी उससे कुछ सीख लेते।'

[दायीं दीवार के कमरे से छोटी भाभी (इन्दु की माँ और छोटी बहू बेला की सास) प्रवेश करती हैं। उनके पीछे-पीछे रजवा है।]

छोटी भाभी—क्यों इन्दु बेटी, क्या बात हुई—यह रजवा रो रही है, कोई कड़ी बात कह दी छोटी बहू ने इसे ?

इन्दु—मीठी वे कब कहती हैं जो आज कड़ुवी कहेंगी ?

छोटी भाभी—यह आज तुम कैसी जली-कटी बातें कर रही हो ? छोटी बहू से झगड़ा हो गया है क्या ?

रजवा—(भरे हुए गले से) माँ जी, आज उन्होंने बरबस मुझे काम से हटा दिया....इतने बरस हो गये आपकी सेवा करते, कभी किसी ने इस प्रकार अनादर न किया था। मुझे तो माँ जी, आप अपने पास ही रखिये। मैं आज से उनका काम न करने जाऊँगी।

छोटी भाभी—वह तो बच्ची है मिश्रानी, तू भी उसके साथ बच्ची हो गयी।

इन्दु—(मुँह बिचकाकर व्यंग्य से) जी हाँ, बच्ची है ! रोटी को चोची कहती है। उसे तो बात ही करनी नहीं आती (क्रोध से) अपने मायके के सामने तो वह किसीको कुछ समझती ही नहीं और गज़ भर की ज़बान........

बड़ी बहू—बात यह है छोटी माँ कि छोटी बहू को हमारा खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना कुछ भी पसन्द नहीं। उसे हमसे, पड़ोस से, हमारी हर बात से घृणा है।

छोटी भाभी—(चिन्ता से) फिर कैसे चलेगा ? हमारे घर में तो मिलकर रहना, बड़ों का आदर करना, अपने घर की

रूखी-सूखी को दूसरों की चुपड़ी से अच्छा समझना, नौकरों पर दया और छोटों पर......

(मँझली बहू बाहर से हँसती हुई प्रवेश करती है।)

मँझली बहू— खिहि...खिहि....खिहि....हा हा हा......

इन्दु—क्या बात है भाभी, जो हँसी के मारे लोट-पोट हुई जा रही हो।

मँझली बहू—खिहि....खिहि.... (हाथ पर हाथ मारती है।)....हा-हा—हा-हा-हा........

(गैलरी से मँझली भाभी और बड़ी भाभी प्रवेश करती हैं।)

दोनों—क्या बात है जो आज इतनी 'हा हा, ही ही' हो रही है?

इन्दु—यह भाभी हैं कि बस हँसे जा रही हैं, कुछ बताती ही नहीं।

मँझली बहू—मैं कहती हूँ........

(फिर हँस पड़ती है।)

बड़ी बहू—आख़िर कुछ कहो भी।

मँझली बहू—आज भाई परेश की वह गत बनी कि बेचारा अपना-सा मुँह लेकर रह गया....खिहि....खिहि....हा-हा हा-हा—हा-हा-हा....

छोटी भाभी—ओ हो, तुम्हारी हँसी भी बहू........

मँझली बहू—मैं क्या करूँ! मैं हँसी के मारे मर जाऊँगी छोटी माँ! अभी-अभी छोटी बहू ने परेश की वह गत बनायी कि बेचारा अपना-सा मुँह लेकर दादा जी के पास भाग गया।

बड़ी बहू और इन्दु—(दोनों) बात क्या हुई ?

मँझली बहू—मैं तो उधर ऊपर सामान रखने गयी थी। बहुत-सी बातें तो मैंने सुनी ही नहीं, बहुत-सी समझ भी नहीं पायी। अंग्रेज़ी में गिटपिट कर रहे थे। छोटी बहू का पारा कुछ चढ़ा हुआ था। इतना मालूम हुआ कि परेश स्नान कर कमरे में गया तो बहू रानी ने सारा फ़र्नीचर निकालकर बाहर रख दिया था। परेश ने कारण पूछा। छोटी बहू ने कहा, 'मैं इन टूटी-फूटी कुर्सियों और गले-सड़े फ़र्नीचर को अपने कमरे में न रहने दूँगी।' परेश कहने लगा, 'हमारे बुजुर्ग....' बात काट कर छोटी बहू ने कहा, 'हमारे बुजुर्ग तो नंगे-बुच्चे जंगलों में घूमा करते थे तो क्या हम भी उनका अनुकरण करें' (हँसती है।) और जो सामान पड़ा था वह भी उठाकर बाहर फेंक दिया।

इन्दु—फिर....फिर....

मँझली भाभी—छोटी बहू........

छोटी भाभी—यह तो........

मँझली बहू—परेश ने कहा, 'इस फ़र्नीचर पर हमारे दादा बैठते थे, पिता बैठते थे, चाचा बैठते थे। उन लोगों को कभी शर्म नहीं आयी, उन्होंने कभी फ़र्नीचर के गले-सड़े होने की शिकायत नहीं की। अब यदि मैं जाकर इसे रखने पर आपत्ति करूँगा तो दादा कहेंगे कि तहसीलदार होते ही लड़के का सिर फिर गया है'। (हाथ मटकाकर) न भाई ?

मँझली और बड़ी भाभी—(दोनों) हाँ, ठीक ही तो कहा परेश ने।

छोटी भाभी—परेश....मेरा बेटा भला........

मँझली बहू—तब बहू ने कहा, 'तो न कहो—मैं तो इस गले-सड़े सामान को कमरे के पास तक न फटकने दूँगी। इस बेडौल फ़र्नीचर से तो नीचे धरती पर चटाई बिछाकर बैठना-लेटना अच्छा है। मेरे मायके में........'

इन्दु—(क्रोध से) बस, उसे तो अपने मायके की पड़ी रहती है चौबीसों घड़ी।

मँझली बहू—और छोटी बहू ने अपने मायके के बड़े-बड़े कमरों और उनके बहुमूल्य फ़र्नीचर का बखान किया (हँसती है।) और महाशय परेश की एक भी न चलने दी। बेचारे भीगी बिल्ली बने दादा जी के पास चले गये—खि-हि-हि...खि-हि-हि....

(हँसती है। दूसरी भी उसके साथ हँसती है।)

—मैं तो चुपके से चली आयी (मुँह बिचकाकर) ज़बान है छोटी बहू की या कतरनी....और फिर जब अंग्रेज़ी बोलने लगती है तो कुछ समझ में ही नहीं आता। परेश बेचारा तो अपना-सा मुँह लेकर रह जाता है। जाने तहसीलदार कैसे बन गया!

इन्दु—बस ज़बान ही ज़बान है। बात तो जब है, तब काम भी हो। एक काम को कहो तो सौ नाक-भौंह चढ़ाती है। दादा जी ने चार कपड़े धोने को कहा था, वे तो पड़े गुसलखाने में गल रहे हैं।

छोटी भाभी—गुसलखाने में गल रहे हैं! तू उठा क्यों न लायी उन्हें, जा भागकर उठा ला और फटककर आँगन में डाल दे। मैं बहू को समझा दूँगी—इस तरह कैसे चलेगा....(और भी चिन्ता से)....परेश ने समझाया नहीं उसे ?

इन्दु—परेश की तो जैसे वहाँ बड़ी सुनवाई होती है।

मँझली बहू—वह मलमल के थान और *अबरों की बात याद है न—अभी तक पड़े हुए हैं। कह-कहकर हार गये परेश महाशय। बहू रानी ने हाथ तक न लगाया उन्हें और वे शर्म के मारे ले जाते नहीं दादा जी के पास। कचहरी में होंगे तहसीलदार, घर में तो अपराधियों से भी गये-बीते हो जाते हैं।

(हँसती है, इन्दु और बड़ी बहू भी हँसती हैं।)

छोटी भाभी—पर दादा जी के कपड़े......

बड़ी भाभी—तुम भी बहन बस....क्या इतना पढ़ लिखकर छोटी बहू कपड़े धोयेगी!

इन्दु—क्यों? उसके हाथ नमक मिट्टी के हैं जो गल जायँगे।

(बाहर से दादा के हुक्का गुड़गुड़ाने की आवाज़ आती है।)

छोटी भाभी—तुम चलो इन्दु—कपड़े फटककर अहाते में डाल दो। शायद उन्हें ज़रूरत हो। माँगेंगे तो....मैं बहू को समझा दूँगी।

[पर्दा गिरता है।]

---

* अबरा—लिहाफ़ के ऊपर का कपड़ा।

दूसरा दृश्य

hed

[वही बरामदा। दायीं ओर के तख्त पर बिस्तर बिछा हुआ है। दीवार के साथ तकिया लगा है। दादा आराम से तकिये के सहारे बैठे हुक्का पी रहे हैं। उनका मँझला लड़का कर्मचन्द पास बैठा उनके पाँव दाब रहा है। हुक्का पीते-पीते दादा बच्चों को बाहर अहाते में खेलते हुए देख रहे हैं। स्नान-गृह से नल के जल्दी-जल्दी चलने की आवाज़ आ रही है। शायद कोई बच्चा उसे चला रहा है। क्योंकि कर्मचन्द की भृकुटी तन गयी है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद तक नल के चलने और हुक्के के गुड़-गुड़ाने की आवाज़ आती है। फिर......]

कर्मचन्द—(क्रोध से) बस करो जगदीश! क्या खट-खट लगा रक्खी है? ज़रा आराम करने दो। अभी-अभी खाना खाकर बैठे हैं कि तुम........

दादा—(हुक्के की नली को हटाकर उधर देखते हुए) नहीं नहीं खेलने दो बच्चों को। (फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।) बच्चे.... हँसते हैं। बरगद की पूरी डाल लाकर आँगन में लगा दी और उसे पानी दे रहे हैं....(हँसते हैं।) नहीं जानते कि पेड़ से टूटी डाली जल देने से नहीं पनपती। (हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर नली छोड़कर कर्मचन्द से) मैं कहा करता हूँ न बेटा कि एक बार वृक्ष से जो डाली टूट गयी, उसे लाख पानी दो, उसमें वह सरसता न आयेगी और हमारा यह परिवार बरगद के इस महान पेड़ ही की भाँति है........

कर्मचन्द—लेकिन शायद अब इस पेड़ से एक डाली टूटकर अलग हो जाय।

दादा—(चिन्ता से) क्या कहते हो? कौन अलग हो रहा है?

कर्मचन्द—शायद छोटा अलग हो जाय?

दादा—परेश? पर क्यों—उसे क्या कष्ट है?

कर्मचन्द—कष्ट उसे तो नहीं, छोटी बहू को है।

दादा—मुझे किसी ने बताया तक नहीं। यदि कोई शिकायत थी तो उसे वहीं मिटा देना चाहिए था। हल्की-सी खरौंच भी, यदि उसपर तत्काल दवाई न लगा दी जाय, बढ़कर एक बड़ा घाव बन जाती है और वही घाव नासूर हो जाता है, फिर लाख मरहम लगाओ ठीक नहीं होता।

कर्मचन्द—मैं अच्छी तरह तो नहीं जानता, पर जहाँ तक मेरा विचार है, छोटी बहू के मन में दर्प की मात्रा ज़रूरत से कुछ ज़्यादा है। मैंने वह मलमल के थान और रज़ाई के अबरे लाकर दिये थे न? और सब ने तो रख लिये पर सुना है कि छोटी बहू को पसन्द नहीं आये। अपने मायके के घराने को शायद वह इस घराने से बड़ा समझती है और इस घर को घृणा की दृष्टि से देखती है।

दादा—बेटा, बड़प्पन बाहर की वस्तु नहीं—बड़प्पन तो मन का होना चाहिए। और फिर बेटा, घृणा को घृणा नहीं मिटाया जा सकता। बहू तभी पृथक होना चाहेगी जब उसे घृणा के बदले घृणा दी जायगी। लेकिन यदि उसे घृणा के बदले स्नेह मिले तो उसकी समस्त घृणा धुँधली पड़कर लुप्त हो जायगी। (हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।) और महानता भी बेटा,

किसी से मनवायी नहीं जा सकती, अपने व्यवहार से अनुभव करायी जा सकती है। ठूँठ वृक्ष आकाश को छूने पर भी अपनी महानता का सिक्का हमारे दिलों पर उस समय तक नहीं बैठा सकता, जिसकी शीतल सुखद छाया मन के सारे ताप को हर ले और जिसके फूलों की भीनी-भीनी सुगन्ध हमारे प्राणों में पुलक भर दे।

भाषी—(बाहर से) दादा जी, मल्लू और जगदीश ने मेरा वट का पेड़ उखाड़ दिया (मल्लू से लड़ते हुए चीख़-चीख़कर) क्यों उखाड़ा तूने मेरा पेड़—क्यों उखाड़ा....?

दादा—पेड़?....(हँसते हैं।)........बच्चे!! (हँसते हैं।) ठहरो भाषी, लड़ो मत बेटा। जाना कर्मचन्द, ज़रा हटाना दोनों को........

(कर्मचन्द जाता है। दादा फिर हुक्के की नली मुँह से लगा लेते हैं—परेश नीची नज़र किये प्रवेश करता है।)

दादा—आओ बेटा परेश, वह मैंने एक दो कपड़े भेजे थे न, तनिक देखना बहू ने उन्हें धो डाला है या नहीं। धो डाले हों तो ले आओ ज़रा। फिर मैं तुमसे बात करूँगा।

परेश—मैं लज्जित........

दादा—नहीं धुले तो फिर धुल जायँगे बेटा! आओ इधर बैठो मेरे पास। मैं तो तुम्हें बुलाने ही वाला था। आओ आओ, इधर आकर बैठो!

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं। परेश चुपचाप आकर दादा के पास बैठ जाता है।)

दादा—(हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़कर) मुझे कर्मचन्द से अभी पता चला है कि तुम्हारी बहू को रज़ाई के अबरे और मलमल का थान पसन्द नहीं आया। तुम्हारे ताऊ ठहरे पुराने समय के आदमी। वे नये फ़ैशन की चीज़ें खरीदना क्या जानें? जभी तो मैं कहता हूँ कि छोटी बहू को बाज़ार ले जाओ। वह स्वयं अपनी पसन्द की चीज़ें ले आयेगी।

परेश—जी........

दादा—(हुक्के का कश लगाकर) और मैं सोचता था कि अब बहू आ गयी है तो इन्दू का दहेज़ तैयार करने में भी सहायता देगी।

परेश—जी, मैं इसलिए आया था........

दादा—हाँ-हाँ कहो, झिझकते क्यों हो!

परेश—जी, बात यह है कि इस घर में बेला का मन नहीं लगता।

दादा—इतनी जल्दी उसका मन कैसे लग सकता है बेटा। अभी कै दिन हुए हैं उसे आये? और फिर बेटा मन लगता नहीं लगाया जाता है।

परेश—वह मन लगाती ही नहीं।

दादा—तो हमें उसका मन लगाना चाहिए। वह एक बड़े घर से आयी है। अपने पिता की इकलौती बेटी है। कभी नाते-रिश्तेदारों में नहीं रही। इस भीड़-भाड़ से वह घबराती होगी। इतने कोलाहल से वह ऊब जाती होगी। हम सब मिलकर इस घर में उसका मन लगायेंगे।

परेश—उसे कोई भी पसन्द नहीं करता। सब उसकी निन्दा करते हैं। अभी मेरे पास माँ, बड़ी ताई, मँझली ताई, बड़ी भाभी, मँझली भाभी, इन्दु, रजवा—सब आयी थीं। सब उसकी शिकायत करती थीं—ताने देती थीं कि तू उसके हाथ बिक गया है, तू उसे कुछ नहीं समझाता और इधर वह उन सब से दुखी है, कहती है—सब मेरा अपमान करती हैं, सब मेरी हँसी उड़ाती हैं, मेरा समय नष्ट करती हैं, मैं ऐसा महसूस करती हूँ, जैसे मैं परायों में आ गयी हूँ, अपना एक भी मुझे दिखाई नहीं देता........आप मेरी मानें तो........

दादा—हाँ, हाँ, कहो........

परेश—बात यह है कि वह आजादी चाहती है। दूसरों का हस्तक्षेप, दूसरों की आलोचना उसे पसन्द नहीं........!

(दादा सिर्फ हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।)

—वह समझती है कि वह छोटी बहू है, इसलिए सब उसकी आलोचना करना, उसे आदेश देना अपना कर्तव्य समझते हैं।........

(दादा सिर्फ़ हुक्का गुड़गुडाते हैं।)

—और वह अपनी पृथक गृहस्थी बसाना चाहती है। जहाँ उसे कोई रोकनेवाला न हो। जहाँ वह स्वेच्छापूर्वक अपना जीवन बिता सके। वह चाहती है कि यदि बागवाला मकान उसे मिल जाय तो वह सुख और शान्ति से रहे। मैं तो सदैव यहाँ बना न रहूँगा, कुछ ही दिनों की बात है। मेरी तब्दीली हो जायगी। उतने दिन को यदि आप बागवाले मकान

का प्रबन्ध कर दें !........उसकी सारी उद्विग्नता, अन्यमनस्कता और तिलमिलाहट में उसकी यही इच्छा काम करती है। अब मैं उसे कैसे समझाऊँ........

दादा—(कुछ क्षण चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर) हूँ! (खाँसते हैं।) यों तो इस झंझट से छुटकारा पाने का सरल उपाय यही है कि तुम्हें बागवाला मकान दे दिया जाय—वह पड़ा भी बेकार है और अभी मैं उससे किसी तरह का काम लेने का भी इरादा नहीं रखता, पर तुम जानते हो बेटा, मेरे जीते जी यह असम्भव है। (फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं।) मैं जब अपने परिवार का ध्यान करता हूँ तो मेरे सामने वट का महान् पेड़ घूम जाता है (खाँसकर) शाखाओं, पत्तों, फलों, फूलों से भरा-पूरा (हुक्के के एक-दो कश लगाते हैं) और फिर मेरी आँखों के सामने इस महान वृक्ष की डालियाँ टूटने लगती हैं और वह केवल ठूँठ रह जाता है (स्वर धीमा, जैसे अपने आप से कह रहे हैं।) और मैं सिहर उठता हूँ। न बेटा, मैं अपने जीते जी यह सब न होने दूँगा। तुम चिन्ता न करो। मैं सबको समझा दूँगा—घर में किसीको तुम्हारी पत्नी का तिरस्कार करने का साहस न होगा। कोई उसका समय नष्ट न करेगा। ईश्वर की अपार कृपा से हमारे घर सुशिक्षित, सुसंस्कृत बहू आयी है तो क्या हम अपनी मूर्खता से उसे परेशान कर देंगे? तुम जाओ बेटा, किसी प्रकार की चिन्ता को मन में स्थान न दो। मैं कोई न कोई उयाय ढूँढ़ निकालूँगा। तुम विश्वास रखो, वह

अपने आपको परायों से घिरी अनुभव न करेगी। उसे वही आदर-सत्कार मिलेगा जो उसे अपने घर में प्राप्त था।

परेश—जैसा आप उचित समझें।

दादा—और देखो, तुम स्वयं भी इस बात का ध्यान रखना, तुम्हारी किसी बात से उसका मन न दुखे। कोई भी ऐसी बात न करो जिसे वह अपना अपमान समझे।

(परेश चलने को होता है।)

—और तुम उसे साथ ले जाकर नगर से सब चीज़ें खरीद लाओ। शेष की चिन्ता तुम न करो, मैं कोई न कोई रास्ता अवश्य निकाल लूँगा।

परेश—जैसी आपकी इच्छा।

(चला जाता है। दादा फिर हुक्का गुड़गुडाने लगते हैं। हुक्के के कश लम्बे हैं, जो इस बात के साक्षी हैं कि दादा हुक्का पीने के साथ-साथ सोच भी रहे हैं।)

दादा—(जैसे अचानक उन्हें कुछ सूझ गया हो।) रजवा ... ..रजवा........(फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, रजवा नहीं आती, फिर अवाज़ देते हैं) रजवा........

रजवा—(दूर से) जी आयी।

(भागती हुई-सी प्रवेश करती है।)

दादा—छोटी बहू के अतिरिक्त सबको यहाँ भेज दो। कहो कि सब काम छोड़कर मेरे पास आयें (रजवा जाने लगती है।) और सुनो, कोई न रहे—सब से कहना, कुछ क्षण के लिए अवश्य यहाँ आ जायँ।

रजवा—जी मैं अभी जाकर सब से कहे देती हूँ।

(चली जाती है। दादा फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं। नल से किसीके कपड़े धोने की आवाज़ आने लगती है। दादा और भी लम्बे-लम्बे कश लेते हैं। धीरे-धीरे कुटुम्ब के प्राणी आने लगते हैं। बालक और युवक तख़्त और चारपाइयों पर बैठते हैं और स्त्रियाँ बरामदे के फ़र्श पर। रजवा उनके बैठने के लिये मोढ़े और चटाइयाँ लाकर बिछा देती है।)

दादा—(हुक्का पीना छोड़कर) इन्दु कहाँ है, वह नहीं दीखती ?

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं और एक नज़र सबको देखते हैं। रजवा स्नान गृह को जानेवाले दरवाज़े में जाकर इन्दु को आवाज़ देती है। कपड़े धोने की आवाज़ जो इस बीच निरन्तर आती रही है, सहसा बन्द हो जाता है।)

इन्दु—(बाहर से) जी आयी (अन्दर आकर) मैं नल पर थी, कपड़े धोने में लगी थी।

दादा—(एक कश खींचकर) बैठो बेटा (एक-दो क्षण तक हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) मैंने आज तुम सब को एक विशेष अभिप्राय से बुलाया है। मुझे यह सुनकर बड़ा दु:ख हुआ कि छोटी बहू का मन यहाँ नहीं लगा।

इन्दु—दादा जी........

दादा—इन्दु बेटा, मुझे अपनी बात कह लेने दो। मुझे यह जानकर बड़ा दु:ख हुआ कि छोटी बहू का मन यहाँ नहीं लगा। दोष उसका नहीं, दोष हमारा है। वह एक बड़े घर की

बेटी है, अत्यधिक पढ़ी-लिखी है। सबसे आदर पाती और राज करती आयी है। यहाँ वह केवल छोटी बहू है। यहाँ उसे हर एक का आदर करना पड़ता है; हर एक से दबना पड़ता है; हर एक का आदेश मानना पड़ता है—यहाँ उसका व्यक्तित्व दबकर रह गया है। मुझे यह बात पसन्द नहीं (कुछ क्षण हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर—) बेटा, 'बड़ा' वास्तव में कोई उमर से या दर्जे से नहीं होता। बड़ा तो बुद्धि से होता है, योग्यता से होता है। छोटी बहू उम्र में न सही, अक्ल में हम सब से निश्चय ही बड़ी है। हमें चाहिए कि उसकी बुद्धि से, उसकी योग्यता से लाभ उठायें। मेरी इच्छा है कि उसे यहाँ वही आदर-सत्कार मिले जो उसे अपने घर में प्राप्त था। सब उसका कहना मानें, उससे परामर्श लें और मैं प्रसन्न हूँगा, यदि उसका काम भी तुम लोग आपस में बाँट लो और उसे पढ़ने-लिखने का अधिक अवसर दो। उसे अनुभव ही न हो कि वह किसी दूसरे घर में, किसी दूसरे वातावरण में आ गयी है।

(फिर कुछ क्षण हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर)

—बेटा यह कुटुम्ब एक महान वृक्ष है। हम सब इसकी डालियाँ हैं। डालियों ही से पेड़ पेड़ है और डालियाँ छोटी हों चाहे बड़ी, सब उसकी छाया को बढ़ाती हैं। मैं नहीं चाहता, कोई डाली इससे टूटकर पृथक हो जाय। तुम सदैव मेरा कहा मानते रहे हो। बस यही बात मैं कहना चाहता हूँ........यदि मैंने सुन लिया—किसीने छोटी बहू का निरादर किया है; उसकी हँसी उड़ायी है या उसका समय नष्ट किया है, तो इस

घर से मेरा नाता सदा के लिए टूट जायगा.......अब तुम सब जा सकते हो ।

(फिर हुक्का गुड़गुडाते हैं । सब धीरे-धीरे जाने लगते हैं ।)

दादा—इन्दु बेटा और मँझली बहू, तुम ज़रा बैठो ।

(दोनों के अतिरिक्त शेष सब चले जाते हैं ।)

....मँझली बहू, तुम अपनी हँसी को उन लोगों तक ही सीमित रखो बेटा, जो उसे सहन कर सकते हैं । बाहर के लोगों पर घर में बैठकर हँसा जा सकता है, किन्तु घर के लोगों को तब तक हँसी का निशाना बनाना ठीक नहीं, जब तक वे पूर्णतया घर का अंग न बन जायँ और इन्दु बेटा, तेरी छोटी भाभी बड़ी बुद्धिमती, सुशिक्षित और सुसंस्कृत है ; तुझे उसकी हँसी उड़ाने, उससे लड़ने-झगड़ने के बदले उसका आदर करना चाहिए, उससे ज्ञानार्जन करना चाहिए । तुम दोनों को मैं इस विषय में विशेषकर सावधान रहने का आदेश करता हूँ ।

(फिर हुक्का गुड़गेड़ाने लगते हैं फिर क्षण भर बाद)

....अब तुम जाओ और देखो फिर मुझे शिकायत का अवसर न मिले (गला भर आता है ।) यही मेरी आकांक्षा है कि सब डालियाँ साथ-साथ बढ़ें, फलें—फूलें, जीवन की सुखद, शीतल वायु के परस से झूमें और सरसायें ! पेड़ से अलग होने-वाली डाली की कल्पना ही मुझे सिहरा देती है ।

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं ।)

इन्दु—हमें क्षमा कीजिए दादाजी, हमारी ओर से आपको कभी शिकायत का अवसर न मिलेगा ।

(दोनों चली जाती हैं। दादा कुछ देर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर बाहर खेलते हुए बच्चों को आवाज़ देते हैं।)

दादा—भाषी, मल्लू, जगदीश—आओ, आज तुम्हें एक कहानी सुनायें.......बरगद के पेड़ और उसके बच्चों की।

भाषी—(दरवाज़े से झाँककर) हम सुन चुके हैं। हम नहीं आते। हर बार वही कहानी........

मल्लू—चाँद राजा, तारा राजा की सुनाओ तो आयें। हर बार वही कहानी (नक़ल उतारकर) एक था बरगद का पेड़.......

(हँसते हुए अदृश्य हो जाते है।)

दादा—(हँसते हैं) यही कहानी—यही कहानी तो कुटुम्ब का, समाज का, राष्ट्र का निर्माण करती है। यही तो जीवन को सुदृढ़, विशाल और महान बनाती है।

(हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं।)

[पर्दा गिरता है।]

तीसरा दृश्य

[वही बरामदा—दोनों तख्त पूर्ववत् खिड़कियों के बराबर रखे हुए हैं और चारपाइयाँ वैसे ही दीवार के साथ लगी खड़ी है। हाँ, कुर्सी मध्य में आ गयी है—लगता है कि इस पर छोटी बहू—बेला—बैठी धूप ले रही थी—किन्तु पर्दा उठने पर वह आकुलता से बरामदे में घूमती हुई दिखायी देती है—एक हाथ में पुस्तक है, मानो पढ़ते-पढ़ते कोई विचार आ जाने से उठकर घूमने लगी हो।]

बेला—(अपने आप से) मैं किन लोगों में आ गयी हूँ? ये कैसे लोग हैं....कुछ भी समझ नहीं पाती.......आज कुछ हैं कल कुछ........पल में तोला, पल में माशा.......इनका कुछ भी तो पता नहीं चलता।

(फिर सोचती हुई धीरे-धीरे घूमती है।)

....गर्म होते हैं तो आग बन जाते हैं और नर्म होते हैं तो मोम से भी कोमल दिखाई देते हैं। आज जिस बात को बुरा कहते हैं, कल उसी की प्रशंसा करते हैं—मैं तो तंग आ गयी इन लोगों से।

(जाकर फिर कुर्सी पर बैठ जाती है और पुस्तक खोल लेती है। अन्दर गैलरी से उसकी सास, छोटी भाभी आती हैं।)

छोटी भाभी—तुम ठीक कहती थीं बेटी, इस रद्दी सामान से बैठक नहीं, कबाड़ी का गोदाम दिखाई देती थी। सोचती थी कि यह सामान इतने दिनों से कमरे में पड़ा है, कुछ ऐसा बुरा भी नहीं और इस इतनी देर से सब बैठते आ रहे हैं, कहीं दादा जी बुरा न मानें, पर अच्छा किया तुमने जो वह सब

उठा दिया। मैंने परेश से कह दिया है—तुम उसके साथ जाकर अपनी रुचि का सामान खरीद लाओ। यह सब मैं रजवा से कहकर सुरेश के कमरे में भिजवा देती हूँ। कई बार निगोड़ी इन्हीं कुर्सियों के लिए मुझसे रूठ चुका है।

बेला—आप बैठिए माँ जी........

छोटी भाभी—बस तुम बैठो बेटी। मैं तो यों ही तुम्हें इधर बैठे देखकर चली आयी। अनाज पड़ा है उसे फटकना है; मिर्चें पड़ी हैं, उन्हें कूटना है; मक्खन कई दिनों का इकट्ठा हो गया है उसका घी बनाना है—बीसों दूसरे काम हैं और दिन ढल रहा है। मैं सोचती थी, तुमने मेरी बात का बुरा न माना हो। वास्तव में बेटी, रजवा मेरे पास आकर फूट फूटकर रो दी। नौकरानी समझदार, विश्वसनीय और आज्ञाकारी है—किन्तु जो काम उसने कभी किया ही न हो, वह उससे किस प्रकार हो सकता है?

बेला—(उठती हुई) आप बैठिए तो........

छोटी भाभी—(उसके कन्धों पर हाथ रखकर उसे बैठाते हुए) बैठो-बैठो बेटी, कष्ट न करो। मैं तुम्हारा अधिक समय नष्ट न करूँगी। मैं तो केवल तुमसे उसकी सिफ़ारिश करने आयी थी। भावुक स्त्री है, जल्दी ही बात का बुरा मान जाती है। तुम यों करना कि ज्यों ही नया फ़र्नीचर आ जाये, अपने सामने लगवाकर रजवा को एक बार झाड़ना-बुहारना सिखा देना। फिर वह ग़लती नहीं करेगी, न हो तो कभी बता देना। मैं उसे समझा दूँगी।

बेला—नहीं, नहीं आप........

सास—तुम पढ़ी-लिखी समझदार हो बेटी, इसलिए तुमसे इतना कह दिया है। यों तुम न चाहो तो कोई दूसरा प्रबन्ध हो जायगा। तुम इस बात की तनिक भी चिंता न करो।

(चलने को उद्यत होती हैं।)

बेला—आप बैठिए तो सही........

सास—नहीं, नहीं, तुम अपना पढ़ो। मैं वृथा तुम्हारा समय नष्ट न करूँगी।

(चली जाती हैं।)

बेला—(पुस्तक बन्द करके लम्बी साँस लेती हुई जैसे अपने आप) इन लोगों की कुछ भी तो समझ में नहीं आती। ये माँ जी एक दम कैसे बदल गयीं? अभी परसों मुझे इसी रजवा के लिए डाँट रही थीं। इनका कुछ भी तो पता नहीं चलता।

(फिर पढ़ने लगती है। बड़ी बहू और मँझली भाभी बाहर के दरवाज़े से प्रवेश करती हैं।)

मँझली भाभी—क्यों बेटी, अब रजवा कुछ काम सीख गयी है या नहीं। (ज़रा हँसती है) बुढ़िया है तो सयानी........

बड़ी बहू—आपने इन्दु से ठीक ही कहा था। हमें वास्तव में काम की परख नहीं, पर अब........

बेला—आइये इधर बैठिये, चारपाई सरका लीजिए।

मँझली भाभी—(वैसे ही खड़े-खड़े) मैंने एक अनुभवी नौकरानी खोज लाने के लिए कह दिया है जो नये फैशन के बड़े घरों में काम कर चुकी हो। वास्तव में बहू, दादा जी पुराने नौकरों के हक में हैं—दयानतदार होते हैं और विश्वसनीय। हमारे पास पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम करते आ रहे हैं। इस रजवा की सास भी यहीं काम करती थी, अब रजवा की बहू भी यहीं काम करती है........

बड़ी बहू—मैं कहती हूँ बहन जी, आप रजवा की बहू को ही अपने पास क्यों नहीं रख लेतीं........उसकी उमर भी कम है और काम भी वह जल्दी सीख जायगी।

बेला—(अन्यमनस्क-सी) नहीं, नये नौकर की आवश्यकता नहीं। रजवा काम सीख जायगी, (कुछ चिढ़कर) पर आप खड़ी क्यों हैं?

मँझली भाभी—हम तुम्हारा हर्ज न करेंगी........

बेला—(और भी चिढ़कर) मेरा कुछ हर्ज नहीं होता।

बड़ी बहू—हम आपसे छोटी हैं, वर्ग में भी और बुद्धि में भी........

बेला—(रुआँसी आवाज़ में) आप मुझे क्यों काँटों में घसीटती हैं........आप मेरे साथ क्यों परायों का-सा व्यवहार करती हैं....

(उठ खड़ी होती है।)

बड़ी बहू—बैठिये, बैठिये, मँझली भाभी, आप भी बैठिये....

बेला—मैं चलती हूँ....

(रुलाई को रोककर आँखों पर रूमाल रखे जल्दी-जल्दी चली जाती है।)

मँझली भाभी—(जैसे अपने आप से) परायों का सा....

(बाहर से मँझली बहू के क़हक़हे की आवाज़ आती है—दूसरे क्षण वह इन्दु और पारो के कन्धे पर झूलती हुई बाहर के दरवाज़े से आती है।)

इन्दु—सच........

मँझली बहू—(हँसी रोककर) और क्या मैं झूठ कह रही हूँ? मैंने अपनी इन दो आँखों से देखा (हँसती है।) मलावी ने सारी की सारी छत फावड़े से खोद डाली और बंसीलाल महाशय मुँह देखते रह गये।

(सब ठहाका मारकर हँस पड़ती हैं।)

बड़ी बहू—भाई मुझे भी बताना........क्या किया मलावी ने....सच!

(मँझली बहू चारपाई बिछाकर उसमें धँस जाती है। उसकी एक ओर इन्दु और दूसरी ओर पारो बैठ जाती हैं। मँझली भाभी कुर्सी पर बैठती है और बड़ी बहू खड़ी रहती है।)

मँझली भाभी—(कुर्सी को ज़रा खिसकाकर समीप होते हुए) बंसीलाल के सामने उखाड़कर फेंक दी छत मलावी ने?

मँझली बहू—मैं कहती हूँ....मुँह देखते रह गये बंसीलाल महाशय, ताका किये मुटर-मुटर.......

(सब ठहाका लगाती हैं।)

बड़ी बहू—अरे कौन-सी छत खोद डाली यह तो बताओ...

मँझली बहू—रसोई की और कौन-सी। अभी दो घण्टे भी नहीं हुए कि राज-मज़दूर छत डालकर गये थे और बंसीलाल कारीगरों और मज़दूरों से निबट कर अभी दूकान को गया था कि आ गयी उधर से मलावी मारोमार करती। जाने किसने उसे जाकर बताया कि तुम्हारे देवर ने अपनी रसोई पर छत डाल ली है। लेके फावड़ा बस सारी छत उसने खोद डाली। बंसीलाल तब पहुँचे जब अन्तिम कड़ी भी उखड़ चुकी थी। तब क्या करते—बस ताका किये मुटर-मुटर....

(मँझली भाभी को छोड़कर सब हँसती हैं।)

मँझली भाभी—पर बंसीलाल का लड़का......

बेला—(मुड़कर क्लान्त तथा भारी स्वर में) मैं तो उधर ही जा रही थी। योंही जाते-जाते खड़ी हो गयी। मैं आपकी हँसी में बाधा नहीं डालना चाहती। (स्वर में खिन्न हँसी के साथ) आप हँसिये, ठहाके मारिये।

(चुपचाप अहाते के दरवाजे से निकल जाती है।)

मँझली बहू—मैं कहती थी न कि इस ओर न आओ? मेरी मुई आदत हुई हँसने की।

इन्दु—अब एक यही जगह थी बैठने को........

मँझली बहू—हम हँसती हैं तो हँसती हैं दिल से और छोटी बहू के पढ़ने-लिखने में बाधा पड़ती है। मैं कहती हूँ,

दादा जी को यदि पता चल गया कि हमारे यहाँ बैठने से छोटी बहू के पढ़ने में ख़लल आता है तो वे.......

इन्दु—किन्तु यही एक जगह थी पर्दे वाली........

मँझली बहू—तुम भूल गयीं, हमें ही तो दादा जी ने ख़ास तौर पर सतर्क रहने को कहा था (कहकहा लगाकर हँस पड़ती है।) मैं कहती हूँ, चलो मेरे कमरे में।

इन्दु—मुझे तो दादा जी के कपड़े धोने हैं, मैं चली।

(जल्दी-जल्दी बाहर की ओर चली जाती है।)

मँझली भाभी—ठीक है। तुम लोग अब यहाँ इतना न बैठा करो (बड़ी बहू से) हम तो बहू गोदाम में जा रही थीं, चलो गेहूँ छँटवा लें। छोटी बहन तो कब की गयी हुई है। फिर तो अस्त हो जायगा दिन, और महरियाँ चली जायँगी।

बड़ी बहू—मैं तो फँस गयी मँझली की बातों में....चलो.... चलो।

(दोनों चली जाती हैं।)

मँझली बहू—मैं कहती हूँ पारो, चल मेरे कमरे में। वहाँ चल कर बैठें।

पारो—(चलते हुए) मुझे तो जाना है भाभी। लल्ला आ गया होगा, न मिली तो चिल्लायेगा।

मँझली बहू—(अपने आप से) यह छोटी बहू तो उकाब-सी आकर को डरा गयी।

(पारो चली जाती है। बाहर से बड़ी भाभी आती हुई दिखाई देती है, मँझली बहू भागकर उसके पास जाती है।)

—बड़ी भाभी, सुनी तुमने मलावी की बात, खोद डाली उसने सारी की सारी छत।

(कहकहा लगाती है।)

बड़ी भाभी—मलावी ने छत खोद डाली........

मँझली बहू—(उसे अपने साथ लेकर कमरे की ओर जाती हुई) हाँ, हाँ अभी राज-मजदूर छत बनाकर गये थे कि आ गयी मलावी मारोमार करती......

बड़ी भाभी—पर........

मँझली बहू—चलो मेरे कमरे में। वहाँ चलकर सब बताती हूँ। यहाँ तो छोटी बहू की पढ़ाई में बाधा पड़ती है।

(उसे साथ लेकर अपने कमरे की ओर जाती है। बाहर से परेश और बेला बातें करते प्रवेश करते हैं।)

बेला—(आर्द्र कंठ से) आप मुझे मेरे मायके भेज दीजिये। मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं अपरिचितों में आ गयी हूँ। कोई मुझे नहीं समझता, किसी को मैं नहीं समझती।

परेश—आखिर बात क्या है! कुछ कहो भी।

बेला—मैं जाती हूँ तो सब खड़ी हो जाती हैं। बड़ी भाभी, मँझली भाभी और माँ जी तक! मेरे सामने कोई हँसता नहीं, कोई मुझसे अधिक समय तक बात नहीं करना चाहता। सब मुझसे ऐसा डरती हैं जैसे मुर्गी के बच्चे बाज़ से। अभी-

अभी सब हँस रही थी, ठहाके पर ठहाके मार रही थीं, मैं गयी तो सब ऐसे सन्न रह गयी जैसे भरी सभा में किसी ने चुप की सीटी बजा दी हो।

परेश—पर इसमें........

बेला—और कोई मुझे काम को हाथ नहीं लगाने देती। तनिक सा भी काम करने लगूँ तो सब भागी आती हैं। सब मेरा इस प्रकार आदर करती हैं, मानों मैं ही इस घर में सब से बड़ी हूँ।

परेश—मैं नहीं समझता तुम क्या चाहती हो? तुम्हें शिकायत थी, कोई तुम्हारा आदर नहीं करता, अब सब तुम्हारा आदर करते हैं। तुम्हें शिकायत थी, तुम्हें सब से दबना पड़ता है, अब सब तुम से दबते हैं। तुम्हें शिकायत थी, तुम सबका काम करती हो, अब सब तुम्हारा काम करते हैं। आदर सत्कार, आराम—न जाने तुम और क्या चाहती हो?

(तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ जाता है।)

बेला—(निढाल होकर कुर्सी में धँस जाती है) न जाने मैं क्या चाहती हूँ? (सिसकने लगती है) न जाने मैं क्या चाहती हूँ? पर मैं इतना जानती हूँ कि मैं यह सब आदर, सत्कार, सुख, आराम नहीं चाहती!

(बाहों में मुँह छिपाकर सिसकती है! इन्दु हाथ में कुछ मैले कपड़े लिये हुए बाहर के दरवाज़े से प्रवेश करती है।)

इन्दु—भाभी जी........

बेला—(उसी प्रकार चुप बैठी रहती है।)

इन्दु—(बेला कन्धे को हिलाकर) भाभी जी....भाभी जी....

(बेला मुँह ऊपर उठाती है।)

इन्दु—हैं, भाभीजी, आप तो रो रही हैं?

बेला—(आँखें पोंछकर) नहीं मैं रो नहीं रही, पर इन्दु परमात्मा के लिए मुझे 'जी' 'जी' करके न बुलाया करो।

इन्दु—लो भला यह कैसे हो सकता है। आप मुझसे बड़ी हैं और फिर आप मुझसे कहीं अधिक पढ़ी-लिखी हैं।

बेला—पहले तो तू मुझे यों 'जी' 'जी' करके नहीं बुलाती थी?

इन्दु—मैं तो मूर्ख ठहरी भाभी जी। दादा जी ने कहा था........

बेला—(सहसा चौंककर) दादा जी ने क्या कहा था?

इन्दु—उन्होंने सबको समझाया था कि घर में सबको आपका आदर करना चाहिए।

बेला—किन्तु उन्होंने यह सब क्यों कहा? मैंने तो कभी उनसे इस बात की शिकायत नहीं की?

इन्दु—शायद छोटे भय्या ने उनसे यह कहा था कि आपका जी यहाँ नहीं लगता, आप बाग़वाले........

बेला—ओह! यह बात है।

इन्दु—दादा जी और सब कुछ सह सकते हैं किसी का अलग होना नहीं सह सकते—'हम सब एक महान् पेड़ की

डालियाँ हैं,' वे कहा करते हैं, 'और इससे पहले कि कोई डाली टूटकर अलग हो, मैं ही इस घर से अलग हो जाऊँगा' और उन्होंने हम सबको समझाया कि हम आपका आदर करें, काम करें, और आपको पढ़ने-पढ़ाने का समय दें।

बेला—पर मैं तो आदर नहीं चाहती और मैं तो तुम सबके साथ मिलकर काम करना चाहती हूँ।

इन्दु—यह कैसे हो सकता है भाभी जी.......?

बेला—(दीर्घ निश्वास छोड़ती हुई) आप लोगों ने मुझे कितना ग़लत समझा और मैंने आप लोगों को कितना........

इन्दु—आप कैसी बातें करती हैं? लाइये- कपड़े लाइये। मैं दादा जी के कपड़े धोने जा रही हूँ, साथ ही आपके भी फटक लाऊँ।

बेला—(चुप सोचती है।)

इन्दु—भाभी जी........

बेला—(जैसे मन-ही-मन उसने किसी बात का निश्चय लिया हो) मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगी, मैं भी तुम्हारे साथ कपड़े धोऊँगी।

इन्दु—दादा जी नाराज़ न होंगे........

बेला—मैं दादा जी से कह दूँगी।

इन्दु—भाभी जी........

बेला—मुझे केवल भाभी कहा कर, मेरी प्यारी इन्दु।

इन्दु—(प्यार से भरे हुए गले के साथ) भाभी........

बेला—चल कपड़े धोएँ। धूप निकली जा रही है!

इन्दु—पर आपके कपड़े........

बेला—मेरे कपड़े आज रजवा ने धो दिये थे, शलवार कमीज़ ही तो थी। चल मैं तेरी सहायता करूँगी।

(दोनों चली जाती हैं, कुछ क्षण बाद बरामदे में कपड़े धोने का शब्द आने लगता है। दादा गैलरी की ओर से हुक्का गुड़गुड़ाते, गुड़गुड़ाते, मल्लू की अंगुली थामे प्रवेश करते हैं।)

दादा—हाँ, बेटा मेले में ले चलेंगे। जो तू कहेगा, वही खिलौना ले देंगे।

मल्लू—मैं तो उड़न-खटोला लूँगा।

(सहसा बाहर के दरवाज़े के पास जाकर ठिठक जाते हैं।)

दादा—(आश्चर्य से) हैं! छोटी बहू......

इन्दु—(बाहर से) मैंने तो बहुतेरा कहा, पर भाभी मानी नहीं।

दादा—छोटी बहू, इधर आ बेटी!

(शरमाई हुई बेला दरवाज़े के पास आ खड़ी होती है।)

—बेटा कपड़े धोना तुम्हारा काम नहीं, पढ़-लिखकर........

इन्दु—(जो अपनी भाभी के साथ ही आ खड़ी हुई है।) मैंने बहुतेरा कहा पर भाभी नहीं मानी........

दादा—(जिन्हें इन्दु के स्वर का अनादर अच्छा नहीं लगा) इन्दु, तुझे इतनी बार कहा है कि आदर से........

बेला—(भावावेश के कारण रुँधे हुए कंठ से) दादा जी, आप पेड़ से किसी डाली का टूटकर अलग होना पसन्द नहीं करते, पर क्या आप यह चाहेंगे कि पेड़ से लगी-लगी वह डाल सूखकर मुरझा जाय........

(सिसक उठती है, हुक्के की गुड़गुड़ाहट एकदम बन्द हो जाती है।)

पर्दा सहसा गिर पड़ता है।

सबसे बड़ा आदमी

श्री भगवतीचरण वर्मा

पात्र

गजाती	...	एक रेस्टोरॉं का मालिक
राधे, शंकर	...	दो दोस्त
शर्माजी	...	एक स्वदेश-भक्त
अहमद	...	एक कामरेड
रामेश्वर	...	एक उचक्का
मिस्टर वर्मा	...	एक एडवकेट
चिरौंजी	...	रेस्टोरॉं का बैरा

सबसे बड़ा आदमी

[गजाती की रेस्टोराँ की दुकान है । सामनेवाली दीवार को ढके हुए दो अलमारिमाँ कोनों से मिली रखी हैं । एक अलमारी में चीनी के बर्तन, कांटे, छुरी आदि हैं ; दूसरी में शक्कर, पावरोटी आदि सजे रखे हैं । दोनों अलमारियों के बीच में एक मेज़ रखी है, जिसमें शीशे के ढकने लगे हैं । मेज़ में केक, मिठाइयाँ आदि रखी हैं ।

कमरे की दाहिनी दीवार में तीन दरवाज़े हैं जिनपर परदे पड़े हैं । ये दरवाज़े सड़क पर खुलते हैं । कमरे की बायीं ओर बीचोंबीच एक दरवाज़ा है ।

कमरे के बीचोंबीच सामने की दीवार के सामने दो लम्बी-लम्बी मेज़ें पड़ी हैं—इन मेज़ों पर तख्तों की जगह सीमेण्ट के टुकड़े जड़े हैं । मेज़ों के इधर-उधर कुर्सियाँ पड़ी हैं । दाहिनी तरफ़ दरवाज़े से मिली हुई एक मेज़ है, जिसके सामने एक कुर्सी पड़ी है । उस कुर्सी से मिली हुई दाहिने-बायें एक आराम-कुर्सी पड़ी है । आराम-कुर्सी की पीठ मेज़ की तरफ़ है ।

गजाती साहेब आराम-कुर्सी पर लेटे हुए अखबार पढ़ रहे हैं । कद नाटा—शरीर दुबला-पतला । स्पोर्ट शर्ट और पतलून पहने हैं, पैरों से मोजा नदारद और चप्पल पहने हैं । दाढ़ी-मूंछ साफ़—उनकी उम्र 25 से 45 तक अन्दाज़ी जा सकती है । चिरौंजी का प्रवेश बायीं ओर से ।]

चिरौंजी—बाबू जी ! (गजाती चुप) बाबू जी !

गजाती—(अख़बार पर से नज़र उठाकर चिरौंजी की तरफ़ देखते हुए) क्या बे !

चिरौंजी—चाय लै जाई ?

गजाती—हाँ ! (अख़बार उठाता है)

(चिरौंजी दरवाज़े तक जाता है)

गजाती—चिरौंजी ! इधर आओ ।

(चिरौंजी लौटता है)

गजाती—क्यों जी, आज तुमने एक रोटी में आठ स्लाइसें क्यों निकालीं, जब कि मैंने सोलह निकालने को कल कह दिया था ?

चिरौंजी—बाबूजी !

गजाती—(उँगलियों पर हिसाब लगाते हुए) बाबूजी-बाबूजी क्या करता है—एक—दो—तीन—सात—आठ—हाँ, अभी तक आठ रोटियाँ ज्यादा ख़र्च हुईं । ये आठ आने तुम्हारी तनख़्वाह से काटे जावेंगे ।

चिरौंजी—बाबूजी मर जायेंगे ।

गजाती—अबे, बाबू जी नहीं मरेंगे—मरेगा तू !

चिरौंजी—अब की बाबूजी माफ करें—आगे से सोलह नहीं बत्तीस स्लाइस निकालब ।

(बाहर से आवाज़ आती है ।)

एक आवाज़—तुम मेरी बात नहीं समझते ।

दूसरी आवाज़—अगर तुम ठीक बात कहो, तो वह सबकी समझ में आ सकती है।

गजाती—(चिरौंजी से) जा बे, काम कर।

(चिरौंजी जाता है।)

(दाहिनी ओर से शंकर और राधे का प्रवेश। शंकर पोलो शर्ट और हाफ़ पेण्ट पहने है। हृष्ट-पुष्ट खूबसूरत युवक। राधे रेशम का कुर्ता और महीन धोती पहने है। आँखों पर चश्मा—इकहरे बदन का दुबला-सा युवक। राधे और शंकर गजाती की पासवाली कुर्सियों पर आमने-सामने बैठते हैं।)

राधे—मिस्टर शंकर, आप शेली* को समझे नहीं। नेपोलियन† की क्या हस्ती जो शेली की समता कर सके!

शंकर—हाँ जनाब, वह पिनपिनानेवाला शेली! उनकी नेपोलियन से तुलना करना नेपोलियन का अपमान करना है।

राधे—अच्छा, आप बतलाइये कि इतनी ऊँचाई, इतनी गहराई, इतनी पवित्रता, इतना विद्रोह और इतना सत्य जितना शेली की पंक्तियों में है, कहाँ मिलेगा? उसने जो संसार को सन्देश दिया है, वह नेपोलियन के बस की बात कहाँ थी? शेली ने हमें प्रेम का मार्ग दिखलाया, उसने बर्बरता और पशुता के उन सिद्धान्तों का खंडन किया, जिनका नेपोलियन प्रवर्त्तक था।

शंकर—देखो जी राधे, शेली ने जो कुछ कहा वह सब पागलपन था। किस पवित्रता और किस सन्देश की बातें कर

---

*एक प्रख्यात अंग्रेज़ी कवि।

† जगत-प्रसिद्ध फ़्राँसीसी विजेता।

रहे हो? इनका दुनिया में कोई अस्तित्व ही नहीं। नेपोलियन शक्ति का प्रतिनिधि था और शक्ति ही सत्य है। कल्पना के लोक में जो आदमी विचरता है, वह कायर है। इस वास्तविक जगत् से मुँह छिपा कर वह कल्पना का जगत् बनाता है। आदमी तो वह है जो इसी दुनिया को अपनी कल्पना की दुनिया में बदल सके। नेपोलियन में वह ताकत थी—वह व्यक्तित्व था।

राधे—नेपोलियन पशु था।

शंकर—और शेली अपाहिज था।

(गजाती उठते हैं, पास आकर खड़े होते हैं)

गजाती—किस बात पर बहस छिड़ी है? (मेज़ के सिरे की कुर्सी पर बैठ जाते हैं) चा मंगवाऊँ?

शंकर—दो प्याले चा!

गजाती—(ज़ोर से पुकारता है) तीन प्याले चा (राधे से) हाँ साहेब, किस बात पर बहस छिड़ी है?

राधे—मिस्टर गजाती, मिस्टर शंकर नेपोलियन को शेली से बड़ा बताते हैं। शैतान की तारीफ़ कर रहे हैं, फ़रिश्ते की निन्दा करके!

शंकर—जी हाँ—गजाती साहेब! ये राधे साहेब उन शेली की तारीफ़ कर रहे हैं—एक बौने की एक योद्धा से तुलना कर रहे हैं।

(चा आती है)

गजाती—(सर पर हाथ फेरते और कुछ सोचते हुए) मामला तो बड़ा टेढ़ा है!

राधे—मिस्टर गजाती, आपने ऑन्द्रे-वोसाव*की 'एरियल' पढ़ी है?

गजाती—ओह वह एक महान् ग्रंथ है और शेली महान् व्यक्ति था!

शंकर—और गजाती साहेब, आपने एबट की 'लाइफ़ आफ़ नेयोलियन' पढ़ी है?

गजाती—वह एक महान् ग्रन्थ है और नेपोलियन एक महान् व्यक्ति था।

(शर्मा जी का प्रवेश। मोटे से आदमी; खद्दर का कुर्ता-धोती, काँग्रेसशाही झोला कुर्सी की पीठ पर लटका देते हैं; टोपी मेज़ पर रख देते हैं, कुर्सी पर बैठ जाते हैं।)

राधे—(चा पीता हुआ) मिस्टर गजाती, आपकी चा उतनी ही सुन्दर है, जितना शेली था!

शंकर—मिस्टर गजाती, आपकी चा उतनी ही तगड़ी है, जितना नेपोलियन था!

(शर्माजी सतर्क होते हैं, कनखियों से राधे और शंकर को देखते हैं; फिर गजाती को इशारे से बुलाते हैं। गजाती पास जाता है।)

---

*प्रसिद्ध फ़ाँसीसी लेखक, जिसने 'एरियल' नाम से शेली की जीवनी लिखी है।

शर्मा जी—एक प्याला चा !

(गजाती आवाज़ देता है—एक प्याला चा ! फिर लौटता है)

राधे—शंकर, मुझे दुःख है कि तुम जीवन में कवि की महत्ता नहीं समझते ।

शंकर—जी हाँ, मैं बेवकूफी से दूर रहना ही ठीक समझता हूँ ।

राधे—बेवकूफी—तुम शैतान के उपासक !

शंकर—देखो राधे, ज़रा सोच-सम्हल कर ! योद्धा का उपासक यदि कुछ क्षणों के लिए स्वयम् योद्धा बन जाय तो कोई ताज्जुब की बात नहीं !

गजाती—(बैठता हुआ) मिस्टर शंकर ! साधारण बात-चीत में इस तरह गरम हो जाना ठीक नहीं ।

शर्मा जी—(उस ओर मुखातिब होकर) भ्राताओ वन्दे ! आपको इस प्रकार कलह करना शोभा नहीं देता ।

(दोनों मुड़कर आश्चर्य से उस ओर देखते हैं)

शर्मा जी—क्या मैं यह पूछने का साहस कर सकता हूँ कि आप सज्जनों में विवाद का विषय क्या है ?

शंकर—यह झगड़ा हमारा पर्सनल (निजी) है—आपकी दस्तन्दाज़ी की कोई ज़रूरत नहीं ।

शर्मा जी—गाँधी-गाँधी ! कितना भयानक पतन हो गया हमारे नव-युवकों का ! वे विशुद्ध मातृ-भाषा का प्रयोग तक नहीं कर सकते, शिष्ट होना तो दूर रहा !

राधे—मैं अपने अशिष्टि मित्र की ओर से माफी मांगे लेता हूँ ।

(मिस्टर वर्मा एडवोकेट का प्रवेश । सफेद पतलून जो काफ़ी मैली हो चुकी है, तथा काला कोट जो अब जवाब देने लगा है, पहने है । टाई अस्त-व्यस्त, कालर इतना ऊपर चढ़ गया है कि कमीज़ और कालर के बीच गरदन साफ़ दिखाई देती है ।)

मिस्टर वर्मा—(मेज़ के पास खड़े होते हैं, तीनों सज्जनों को गौर से देखते हैं, ठंडी सांस भरते हैं और शंकर की बगल में बैठ जाते हैं) एक प्याला चा !

(गजाती आवाज देता है—एक प्याला चा !)

शंकर—राधे ! तुमने मुझे अशिष्ट क्यों कहा ? मुझसे माफी मांगो ।

गजाती—अरे जाने भी दीजिए ।

शंकर—नहीं, इन्हें माफ़ी मांगनी ही पड़ेगी ।

राधे—(शर्मा जी की ओर इशारा करते हुए) पहले इनसे मँगवाइये मिस्टर शंकर !

शंकर—(शर्मा जी से) देखिए, आप कौन हैं जो हम लोगों की बातों में कूद पड़े ? आप माफी माँगिये ।

शर्मा जी—मैं सत्याग्रही हूँ—देश का सेवक हूँ । मैंने सरकार तक से माफ़ी नहीं मांगी और जेल चला गया । पिता से लड़कर घर छोड़ आया हूँ, पर उनका फिर मुँह नहीं देखा, और परिणाम यह हुआ कि भूखों मर रहा हूँ । सत्याग्रह करने

के समय पुलिस ने मुझे डण्डों से मारा, शराब की पिकेटिंग करने के समय शराबियों ने मुझे लातों से मारा और कर-बन्दी आन्दोलन के समय जमींदारों ने मुझे जूतों से मारा पर मैंने कभी क्षमा-प्रार्थना नहीं की।

(शर्मा जी कहते-कहते कुछ अकड़ जाते हैं।)

मिस्टर वर्मा—(शंकर से) इनके ऊपर मानहानि का मुकद्दमा दायर कर दीजिये!

शर्मा जी—गांधी-गांधी! इन्हीं वकीलों के कारण तो हम अधःपतन की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। वकील साहेब! आपको मान-हानि की परिभाषा भी विदित है?

(नौकर चा लाता है।)

राधे—(मिस्टर वर्मा से) आप शायद एडवोकेट हैं।

मिस्टर वर्मा—मुझे एडवोकेट होने का सौभाग्य प्राप्त है।

(छाती पर हाथ रखते हैं और गरदन झुकाते हैं।)

राधे—आप अच्छे आ गये। हम दोनों में यह तय नहीं हो रहा था कि शेली बड़ा था या नेपोलियन?

शर्मा जी—दोनों ही पतित थे! इस संसार में सब से बड़े हैं महात्मा गांधी।

मिस्टर वर्मा—महात्मा गांधी बड़े हैं, उन्होंने अपना जीवन वकील की हैसियत से आरम्भ किया था और बिना वकालत पढ़े

कोई आदमी बड़ा हो ही नहीं सकता। न शेली ने वकालत पढ़ी थी और न नेपोलियन ने।

(कामरेड अहमद का प्रवेश)

अहमद—हैलो गजाती—चा!

(गजाती आवाज देता है—एक प्याला चा!)

(थोड़ी देर तक सब चुप रहते हैं—अहमद सब लोगों को ध्यान से देखता है।)।

शंकर—जी हाँ, आप वकील हैं। ज़रा आपका हुलिया तो देखिये!

(मिस्टर वर्मा अपना कालर और टाई ठीक करते हैं।)

राधे—(शंकर से) देखिये कृपा करके आप किसी शरीफ आदमी का अपमान मत कीजिए।

अहमद—(हँसता है) वकील और शराफ़त—मज़ेदार बात है। (शर्मा जी से) कहिये जनाब, वकील और शराफ़त! इतनी मज़ेदार बात कभी आपने सुनी?

शर्मा जी—अवश्य—भ्राता—आप उचित कथन करते हैं। हमारे देश के एकमात्र नेता और विश्व के एकमात्र महापुरुष महात्मा गांधी का आदेश है कि वकालत छोड़ देनी चाहिए। गांधी! गांधी! ये वकील कितने पतित होते हैं!

अहमद—गांधी! वह 'अहिंसा-अहिंसा' पुकारनेवाला गांधी—गलत रास्ते पर चलनेवाला और दूसरों को चलाने-

वाला—अरे वह खब्ती फकीर—वह महात्मा—क्या कहा, दुनिया का सिर्फ अकेला बड़ा आदमी ?

शंकर—खूब कहा—खूब ! जनाब ज़रा आपको देखिये, आप कह रहे थे कि गांधी नेपोलियन से भी बड़ा था। शर्म नहीं आती।

अहमद—(शंकर से) देखो जी, मुझे जनाब-वनाब मत कहना वरना आदमी मैं बिगड़ैल हूँ। मुझे सिर्फ कामरेड कहो।

(रामेश्वरप्रसाद का प्रवेश। नाटे कद के दुबले से आदमी, शेरवानी और चूड़ीदार पैजामा। पैरों में चप्पल, बाल बड़े बड़े और बिखरे हुए हैं। बैठ जाते हैं।)

शर्मा जी—(कान में उंगली देते हुए) महाशय जी, मेरी एक प्रार्थना है कि आप लोग देवता का अपमान न करें, नहीं तो आप एक भयानक नरक के भागी होंगे।

अहमद—नरक ! हाः हाः हाः ! इस नरक को तो लेनिन* ने बहुत पहले ही नेस्तनाबूद कर दिया है।

राधे—दूसरा हत्यारा।

अहमद—क्या कहा हत्यारा ? हाँ, अगर हत्यारा कहते हो तो मुझे कोई एतराज़ नहीं। लेकिन इतना तय है कि लेनिन सा बड़ा आदमी न कभी पैदा हुआ और न कभी पैदा होगा।

(मेज पर हाथ पटकता है।)

---

* रूस का क्रांतिकारी नेता।

रामेश्वरप्रसाद—आप ठीक कहते हैं, लेनिन में बिखरी हुई शक्तियों का प्रबल संग्रह, उसका व्यक्तीकरण—उसकी उग्रता ये सब मिलेंगे। लेनिन—नियति के क्रम और विकास में उसका प्रमुख हाथ है!

शर्मा जी—घोर पतन है भारत माता का! देश के कपूतो! तुम अपने देवता, अपने इष्टदेव महात्मा गांधी को नहीं पहचान रहे हो—धिक्कार है।

रामेश्वरप्रसाद—महात्मा गांधी देवता हैं, इसमें भी कोई शक नहीं। उनकी गणना अवतारों में की जा सकती है।

शंकर—ये दोनों नेपोलियन की बराबरी नहीं कर सकते।

रामेश्वरप्रसाद—नेपोलियन हीरो था हीरो! उसका नाम विश्व-इतिहास में अमर है। नेपोलियन! अहा—वह तूफान की भाँति आया और पतझड़ की भाँति चला गया।

राधे—क्या नेपोलियन शेली से बड़ा था?

रामेश्वरप्रसाद—शेली! शेली फरिश्ता था फरिश्ता! अहाहा शेली—उसने दुनिया को एक सन्देश दिया!

(नौकर चा का प्याला रामेश्वर के सामने रखता है।)

रामेश्वर—(चा पीते हुए) ये लोग दानव थे—दानव! मानव-समाज में दानव ही मान पा सकते हैं!

अहमद—(रामेश्वर से) आप शायद शायर हैं!

रामेश्वर—जी हाँ मैं कलाकार हूँ! (चाय पीता है।)

शर्मा जी—आपने कौन-कौन पुस्तकें लिखी हैं ?

रामेश्वर—अभी नहीं लिखी हैं—लिखनेवाला हूँ। अभी तो लिखने के लिए मसाला ढूंढ़ रहा हूँ! (चाय पीता है।)

शंकर—वैसे आपका पेशा क्या है ?

रामेश्वर—मेरा पेश क्या है ? क्या आप यह पूछना चाहते हैं कि रोज़ी कमाने के लिए मैं क्या करता हूँ—(चाय पीता है, सर उठाकर हँसता है) हाः हाः हाः ! बड़ा मज़ेदार सवाल है। तो जनाब इस सवाल का जवाब यह है कि मैं सब कुछ करता हूँ और कुछ भी नहीं करता। मैं घूमता हूँ, मौज़ करता हूँ और यही ज़िन्दगी है। मैं लोगों को देखता हूँ, उन्हें समझता हूँ—और उसके बाद ? उसके बाद की बात न कोई जानता है न जान सकता है।

(चाय खतम कर देता है।)

राधे—आप अजीब तरह के आदमी हैं !

रामेश्वर—जी हाँ, मैं अज़ीब तरह का आदमी हूँ। लेकिन दुनिया में यह ज़रूरी है कि हरएक आदमी अजीब तरह का हो। दुनिया में यह ज़रूरी है कि अजीब तरह का आदमी बना जाय। और जो अजीब तरह का आदमी नहीं बन सकता, वह दुनिया में बढ़ भी नहीं सकता। समझे ! (उठता है—चलकर अहमद के पीछे खड़ा होता है) आप लोग जिन-जिन लोगों के नाम ले रहे थे वे सब अजीब तरह के आदमी थे—थे न ! (चलकर मि० वर्मा के पास रुकता है) और आप लोग चूंकि अजीब तरह के

आदमी नहीं हैं, इसीलिए इन लोगों की तारीफ़ करते हैं—इनपर लड़ने के लिए आमादा हो जाते हैं। लेकिन मैं एक बात जानता हूँ—बड़ा वह है जो दुनिया को देने के बजाय उससे वसूल कर सके—इन सब लोगों ने दुनिया से वसूल ही किया, उसे दिया कुछ भी नहीं (शंकर के पास खड़ा होता है) लेकिन मैं समझता हूँ कि वे सब के सब मर गये—एक गांधी को छोड़कर; * और जो मर गया, वह समाप्त हो गया। बड़ा वह जो वसूल कर सके—रुपया-पैसा, दीन-ईमान सब कुछ आपसे छीन सके—और जो मर गया वह कुछ नहीं वसूल कर सकता। आज उसकी कोई हस्ती नहीं और जब उसकी कोई हस्ती नहीं, तो उसका नाम ही क्यों? (गजाती के सामने एक आना फेंकता है—दरवाज़े और मेज़ के बीच खड़ा होकर) और इसी से जनाब मैं कह सकता हूँ कि आप सब ग़लती करते हैं। शेली, नेपोलियन, लेनिन, गांधी—ये सब नाम हैं—नाम। इन सबों से बड़ा—कहीं बड़ा मैं हूँ, अभी आप लोगों पर यह साबित हो जायगा—अच्छा दोस्तो, सलाम।

(जाता है)

शंकर—मुझे तो मालूम होता है कि इसका दिमाग खराब हो गया है।

अहमद—(हँसते हुए) बहुरूपिया था।

मिस्टर वर्मा—मग़रूर लौंडा!

राधे—लेकिन बोलता खूब था।

---

*यह एकांकी उस समय लिखा गया था जब गांधीजी जिन्दा थे।

शर्मा जी—वह हमारी दया का पात्र है !

शंकर—चलो जी राधे, अभी हमारा मामला तय नहीं हुआ ।

(उठता है और राधे भी उठता है। दोनों जेब में हाथ डालते हैं और निकाल लेते हैं ।)

शंकर—मेरा पर्स ग़ायब है !

राधे—मेरी तो जेब ही ग़ायब है। (कुरते की जेब दिखाता है)

मिस्टर वर्मा—(एक के बाद एक अपनी सब जेबें देखते हैं) अरे एक हफ्ते में आज पाँच रुपये का नोट मिला था वह भी गायब है ।

शर्माजी—अरे मेरा झोला कहाँ गया? उसमें आज ही पचास रुपये चन्दे में लाया था वे पड़े थे ।

अहमद—ऐं—ये जेब से रुपये कहाँ गये ?

(सब एक दूसरे का मुँह देखते हैं ।)

गजाती– (सामने से इकन्नी उठाकर Cash box में डालना चाहता है लेकिन कैश बक्स नदारद ।)

गजाती—दोस्तो, मेरी राय है कि वह साहब सब से बड़े आदमी थे !

(परदा गिरता है ।)

मम्मी ठकुराइन

श्री लक्ष्मीनारायण लाल

पात्र

नीता	ठकुराइन
बहादुर	प्रोफेसर साहब
अजय	खन्ना बाबू
मम्मी	टिकट बाबू

मुंशीजी

तथा मूंगफलीवाला, चौधरी क़यामत हुसेन ।

मम्मी ठकुराइन

[मंच पर आमने-सामने, अर्थात् बायें-दायें कोनों पर क्रमशः मम्मी और ठकुराइन के घरों के दरवाज़े दीख पड़ रहे हैं। मम्मी के दरवाज़े पर पर्दा झूल रहा है। ठकुराइन के खुले दरवाज़े पर एक खाट बिछी है, एक खड़ी है।

दोनों घरों के बीच में गली है, जो दूर तक दिखाई पड़ती है। अन्त में एक म्युनिसिपल लैम्पपोस्ट, जिसमें लालटेन जलकर बुझ चुकी है। शेष गली में सदा नीली रोशनी—दूसरे दृश्य में और भी हल्की रोशनी, उसपर धुएँ के फैलने का संकेत।

रानी मम्मी की साहबज़ादी नीता, बारह साल की होनहार लड़की, सेलवार पहनती है, बालों में सदा दो चोटियाँ रखती हैं; बड़ी तेज़ बोलने-वाली है, भगवान् बचाये! बहादुर ठकुराइन का मँझला लड़का है, दस वर्ष का, नेकर पर सदा कुर्ता अथवा बनियाइन ही पहनता है। अजी, बड़ा क्रोधी है, बडी-बड़ी आँखों से जैसे सदा घूरता रहता है। अजय, मम्मी का मँझला लड़का, अवस्था से यह भी प्रायः बहादुर का समवयस्क है, पर यह उससे कमज़ोर है, छोटा है पर इससे क्या, अजय के फैशन और लाड़-प्यार के आगे सब झूठे हैं। बड़ा ही तेज़, चंचल और प्यारा दीखता है। मम्मी तो माँ ही हैं अजय की। इनकी न पूछिये, डर लगता है इनके नाज़-नख़रे से, सदा जैसे असन्तुष्ट-अप्रसन्न रहती हैं। अवस्था चालीस से ऊपर ही है, पर अब भी यह एम.ए. फाइनल ज़रूर करेंगी। पतली हो जाने के लिए दवा कराने को सोचती हैं।

मुंशीजी! आय—हाय, दायीं लालटेन बुझते-बुझते रह गयी है। अभी हाल ही में आपरेशन कराके लौटे हैं, दायीं आँख पर हरी पट्टी।

अवस्था पचास साल, हाथ में छड़ी—धोती पर बढ़िया शेरवानी। ठकुराइन साहब! अजी, नमस्ते! देखिए आप बहुत मुसकराती हैं। मैं टिकट बाबू से कह दूंगा, हाँ। अजी, कोई डर है उनका, ठकुराइन एक बालिश्त बड़ी हैं। प्यार से भी एक घूँसा अगर किसी को मार दें तो, राम कसम गंगाजल। पर हँसती कितना हैं, गोरी-चिट्टी, और स्वस्थ! सीधे पल्ले का आँचल जैसे कभी माथे से उतरता ही नहीं। हाय राम…कड़े…छड़े… कंगन…बाली, भरे हाथ की चूड़ियाँ, क्या ग़ज़ब करती हो ठकुराइन!

प्रोफेसर साहब! अजी इनक़लाब, ज़िन्दाबाद। हाँ… हाँ… बोलिये…मम्मी बाज़ार गयी हैं, आपके लिए सूट सिलाने। पैन्ट कसी रखिये, चश्मा न उतारिये…हाँ पढ़ाइये अब। सही कहते हैं आप प्रोफ़ेसर साहब—तेरी दुनिया में सब कुछ है, मगर प्यार नहीं। प्यार के मतलब इश्क़ तनहाई।

अहा हा! खन्ना बाबू! कितने हसीन आदमी थे यार तुम, लेकिन भाई इतने मोटे क्यों होते जा रहे हो? हमें, अपनी भाभी से पूछो न। बहुत तंग करती हैं। बैंक की नौकरी, इधर सर पै घर की भरी टोकरी। पर कोई बात नहीं, खैर! हें हें हेंऽऽऽ?

ओ हो टिकट बाबू! जै राम जी की! ज़रा जल्दी में हूँ, फिर मिलूंगा…डियूटी है डियूटी। सफ़ेद पैंट और काला कोट, माशाल्लाह, कभी धुला डालिये ठाकुर साहब! अजी टिकट बाबू कहो, भड़काओ नहीं मुझे, ताव आ जाता है, हाँ। अच्छा-अच्छा चुप रहो भाई, इधर देखो अब पर्दा उठ रहा है। मार्च की एक शाम, जो रात बन रही है।

क्षण भर के लिए मंच सूना है, पृष्ठभूमि में लड़कों का कोलाहल। फिर सामने गली में रोते हुए अजय का प्रवेश; बहादुर पीछे है, जो ताली पीट-पीटकर हँस रहा है।]

नीता—(अपने दरवाज़े से निकलती है, गुस्से से लाल) बत्तमीज़ कहीं के! (बहादुर के सामने जाकर तन जाती है, जैसे अभी पीट देगी) किसने मारा अजय को? क्यों मारा तुमने?

बहादुर—(हँस के रह जाता है।)

नीता—बत्तमीज़ कहीं के! ज़रा भी अक़ल नहीं। अजय रो रहा है और तुम हँस रहे हो?....आने दो पापा को।

बहादुर—जब दौड़ नहीं पाते तो यह हम लोगों के संग खेलते क्यों हैं?

नीता—तू कहीं का लाट साहब है क्या?

बहादुर—(ग़ुस्से से) हइय! मुझसे बहुत टिर्र-पिर्र मत कीजियो, हाँ!

नीता—इसकी पैंट और कमीज़ क्यों ख़राब कर दी?

बहादुर—गाँठ में ज़ोर नहीं, खेलने आते हैं! भकाभक गिरते हैं, और ऊपर से....पें...पें....पें।

(उसी क्षण अजय रोते-रोते सहसा बहादुर के ऊपर थूक देता है बहादुर धड़ाक से उसके गाल पर एक चाँटा जमा देता है। नीता बहादुर को कई बार मारने को होती है, पर बहादुर उसके हाथों को पकड़-पकड़ लेता है, उसी हंगामे में मम्मी निकलती है।)

मम्मी—बस....बस, ख़बरदार (बीच में आकर बहादुर को अलग कर देती है) क्यों बहादुर तेरी यह मजाल! ....ओ हो.... माई गॉड!! मैं तो डेढ़ ही महीने में ऊब गयी इस मुहल्ले से, तंग आ गयी इस गली और पड़ोस से।

नीता—मम्मी ! अजय की कमीज़ और पेंट की हालत देखिए ।

मम्मी—मैं पागल हो जाऊँगी इस पड़ोस में । यह सारे नये धुले कपड़े ! इतनी धुलाई-सिलाई, ये सब क्या जानें !

अजय—मम्मी देखिये, बहादुर ने मुझे इतनी ज़ोर से मारा है कि....। बत्तमीज़ कहीं का !

मम्मी—बत्तमीज़ तू है ! मैंने तुझसे लाख बार मना किया है, तू इन लौंडों के संग कुछ न खेल, पर तू है कि....।

नीता—मम्मी ! यह बहादुर गन्दी-गन्दी बातें बोलता है ।

मम्मी—आने दो आज तुम्हारे पापा को ! आज कोई फ़ैसला होके रहेगा । (अपने दरवाज़े पर आ) तमाशा बना दिया है ! गली-पड़ोस का दिया हुआ नहीं खाती मैं ! किसकी मजाल है, जो मेरे बच्चों को पीटे ।

नीता—ये लौंडे हमारी दीवार पर गन्दी-गन्दी बातें लिखते हैं मम्मी !

मम्मी—जो न हो जाय सब कम है इस क़स्बे में । (रुक कर) इतने दिनों तक जयपुर में रही, मजाल क्या बच्चे कभी रोये हों, या मुझे तेज़ बोलना पड़ा हो । लेकिन यहाँ मैं चीख-चीखकर पागल हो जाऊँगी ।

नीता— कैसा घूर रहा है बैठा-बैठा यह बहादुर ।

मम्मी—मैं खूब जानती हूँ यहाँ रहने का नतीजा । आने दो प्रोफ़ेसर सतसंगी को । वह रहें अकेले यहाँ । यही बड़ी

प्यारी थी इस टुटपुँजिये कालेज की नौकरी, जो जयपुर के इतने शानदार कालेज को छोड़कर इस गन्दे क़स्बे में आये।

अजय—(बीच ही में मुँह बनाकर) मम्मी, मैं चुपचाप दौड़ रहा था। बहादुर ने पीछे से लंगी मार कर मुझे गिरा दिया।

नीता—और अभी इसने ऊपर से मारा भी।

मम्मी—(आवेश में) क्यों रे बहादुर! इधर तो आ। क्यों मारा तूने अजय को?

बहादुर—इसने थूका है जो मेरे ऊपर।

अजय, नीता—(एक स्वर में) नहीं, नहीं झूठ है मम्मी, बिलकुल झूठ।

अजय—मम्मी! यह बड़ा चार सौ बीस है।

मम्मी—चुप रह अजय!....क्यों बहादुर? तूने अजय को लंगी मारकर क्यों गिराया?

बहादुर—(ग़ुस्से में) बुलाऊँ सारे लड़कों को!

अजय—मम्मी! यहाँ के सब लड़के झुट्ठे हैं।

नीता—सब एक ही थैली के चुट्टे-बट्टे हैं। एक गिरोह है इनका मम्मी!

बहादुर—बस, देवता तो तुम्हीं लोग हो।

मम्मी—(डाँट के स्वर में) चुप रह! तमीज़ से बातें करना सीख!

(तभी अपने दरवाज़े से ठकुराइन का प्रवेश, आँचल में गीले हाथ पोंछती हुई।)

ठकुराइन—क्या है रे बहादुर? चल, घर में चल।

मम्मी—(जैसे अपने-आप से) किस्मत फूट गयी यहाँ आकर। दुनिया में बहुत लड़के हैं, लेकिन यहाँ के सबसे निराले हैं। बाप रे बाप, इतनी बुरी-बुरी आदतें! उफ़! मैं तो पक गयी।

ठकुराइन—हमारी वजह से?

मम्मी—पता नहीं कैसे लोग हैं यहाँ के! कैसी तहज़ीब है उनकी, और उनके बच्चों की।

बहादुर—(सहसा) बस सिर्फ़ आप ही लोग लाट साहब के नाती हैं।

ठकुराइन—(गुस्से से झिटककर) चुप....चुप रहता है कि नहीं। यहाँ लड़ने के लिए खड़ा है? मैं कहूँ कि क्या बात है, मैं तो चौके में थी! (हँस पड़ती हैं) क्यों रे बहादुर! तू क्यों खेलता है मम्मी के बच्चे के संग?

बहादुर—कौन जाता है बुलाने इनके बच्चों को। अजय, विजय, नीता-गीता सब तो अपने-आप घुस आते हैं हममें!

मम्मी—(गुस्से में) तुम्हारा मतलब है कि मैं अपने दरवाज़े पर बच्चों को न टहलने दूँ!

(गली में मुंशीजी आते दीख पड़ते हैं।)

ठकुराइन—अरे....रे....सुनो तो बहू!

मुंशीजी—(आकर) हे जी ठकुराइन, पहले मेरी बात तो सुनो जी !

(ठकुराइन माथा ढककर दरवाज़े पर खड़ी होती है) अजय की मम्मी, तुम भी सुनो ।....जो बात यह है कि इस गली के सारे लड़के तो यहाँ खेल ही नहीं रहे थे । वहाँ बाग़ में खेल रहे थे, इमली के नीचू और आपके बच्चे खुद वहाँ गये ।

मम्मी—(ताव में) जी, आपसे कौन पूछ रहा है ? औरतों के बीच में खामखाह बोलनेवाले आप कौन होते हैं ? जब यहाँ के मरदों को इतनी तमीज़ नहीं तो ये बच्चे क्यों न ऐसे हों ?

मुंशीजी—अरे....जा जा ! बड़ी तमीज़दार आयी है ! नयी नाइन, बाँस का नाहना !

मम्मी—चलो घर में चलो, देखूंगी, मैं, हाँ !

(बच्चों सहित प्रस्थान । भीतर से दरवाज़ा बन्द होता है ।)

मुंशीजी—बड़ी देखी साहबी खूनवालों की ! ....सुनो बहादुर की माँ । इनसे ज़रा दबा न करो बहू । ज़रा भी दबीं तो ये हावी हो जायेंगे, हाँ ।

ठकुराइन—(हँसती हैं) बड़ा ग़ुस्सा है मम्मी को ? लेकिन जितना यह ग़ुस्सा झुँझलाहट ऊपर से है, उतना भीतर से नहीं है मुंशीजी !

मुंशीजी—तो भीतर से तो गऊ है ?

ठकुराइन—(हँसकर) हाँ, बच्चों को लेकर जब यह बोलने लगती है तो सच मैं घबड़ा जाती हूँ । गली-मुहल्ले के, घर-घर

के बच्चे हैं, आपस में खेलते हैं, गिरते-रोते हैं, चुप हो जाते हैं। पर उनके माँ-बाप कभी कोई बात कान पर नहीं लेते।

बहादुर—(ताव में) अपने बच्चों को घर में क्यों नहीं बन्द रखतीं?

ठकुराइन—चुप रह रे! तूफ़ान करेगा क्या?....जा भाग यहाँ से...चल अन्दर।

बहादुर—क्यों जाऊँ? मैं नहीं जाता, अपने दरवाज़े से!

ठकुराइन—मैं कहती हूँ अन्दर जा न!

बहादुर—मैं नहीं जाता! किसी के बाप का डर पड़ा है कि मैं यहाँ से भागूँ! नहीं जाता...!

ठकुराइन—तेरा नाश्ता ठंडा हो रहा है रे!

(ठकुराइन को हँसी आ जाती है, तब बहादुर भीतर आ जाता है।)

मुंशीजी—ठीक ही कहता है। आखिर अपने घर से भाग कर कहाँ जाय? शिव....शिव....। तुम तो घर में रहती हो बहू, मैं सारा दिन अपनी बैठक से देखता रहता हूँ....! हाय.... हाय....अजय....विजय, गीता....नीता। बच्चे हैं कि तुर्की की फ़ौज है।

ठकुराइन—ज़रा धीरे बोलो मुंशीजी!....नहीं तो अजय की मम्मी....।

मुंशीजी—ठकुराइन! यह मम्मी क्या बला है?

ठकुराइन—बच्चे माँ को मम्मी कहते हैं और प्रोफ़ेसर साहब को पापा कहते हैं।

मुंशीजी—(हँसी आ जाती है।) पापा और मम्मी! राजा कहें क़िस्सा, रानी खायें मूँगफली।

ठकुराइन—प्रोफ़सर साहब आ रहे हैं मुंशीजी!

(ठकुराइन दरवाज़े में चली जाती हैं, मुंशीजी थैली में से बीड़ी निकालकर दागने लगते हैं। प्रोफ़ेसर सतसंगी अपने घर के दरवाज़े पर दस्तक देते हैं।)

प्रोफ़ेसर—बेबी....बेबी अजय...ओ नीता!

(बन्द किवाड़ें खुलती हैं, नीता दिखाई पड़ती है।)

प्रोफ़ेसर—अरे! इस उमस में तुम लोग इस तरह कमरा बन्द करके पड़े हो?

नीता—लगता है आज आँधी आयेगी पापा!

प्रोफ़ेसर—मम्मी कहाँ है?

नीता—उन्हें बहुत ज़ोर का सिर दर्द हो रहा है।

प्रोफ़ेसर—अरे!

(नीता के संग भीतर प्रवेश)

मुंशीजी—बहू! सुना है मम्मी जी की छोटी बहिन आयी है।

ठकुराइन—हाँ, आयी तो हैं!

मुंशीजी—वह तो शायद बड़े एखलाक की हैं, पर्दे में रहती हैं, इनकी तरह डगर-डगर नहीं घूमतीं।

ठकुराइन—बच्चा होनेवाला है, कमज़ोर बहुत हैं; डाक्टरनी ने बहुत चलना-फिरना मना किया है।

मुंशीजी—ओ हो! जभी वह मिडवाइफ़ बहुत चक्कर लगाती है।

ठकुराइन—कितनी उमस है आज! परसों की तरह फिर तूफ़ान आयेगा क्या?

मुंशीजी—आँधी आयेगी बहू!

ठकुराइन—पानी भी बरसेगा, ऐसा लगता है।

(अपने दरवाज़े से निकलकर मम्मी बड़ी तेज़ी से बाहर मुड़ती है, क्षण भर बाद प्रोफ़ेसर सतसंगी जैसे मम्मी का पीछा करते हुए आते हैं। ठकुराइन अन्दर चली जाती हैं, मुंशीजी गली में मुड़ जाते हैं।)

प्रोफ़ेसर—(पुकारते आते हैं) सुनती हो....अजी सुनो, अजय की माँ!

(भीतर से अजय और नीता का प्रवेश)

प्रोफ़ेसर—(बिगड़कर) तुम्हारी मौसी जी के पास कौन है? चलो अन्दर! नीता तुम जाओ....जाओ मौसी जी के पास रहो। (रुककर) अजय, देखो तुम्हारी मम्मी कहाँ गयी?

अजय—पापा, मुझे बहादुर ने मारा है।

नीता—और उल्टे बहादुर की माँ मम्मी से लड़ने को आमादा थीं।

अजय—पापा, वह जो खूसट बुड्ढा, मुंशी है न! वह भी लड़नें लगा उन्हीं की ओर से।

प्रोफ़ेसर—(झल्लाते हुए) अच्छा....अच्छा! आओ तुम मम्मी को देखो।

अजय—पापा, सारे लड़के हम लोगों को तंग करते हैं। बुरी-बुरी बातें करते हैं। गन्दी-गन्दी आदतें सिखाते हैं।

प्रोफ़ेसर—मैं कहता हूँ, पहले मम्मी को जाकर देखो।.... नीता, तुम मौसी के पास क्यों नहीं जातीं?

(नीता भीतर लौट जाती है।)

प्रोफ़ेसर—अजय, जाओ मम्मी को देखो!

(उसी क्षण मम्मी प्रविष्ट होती हैं।)

मम्मी—क्या करोगे मम्मी का? मम्मी तो खुद पागल हो गयी!

प्रोफ़ेसर—सुनो तो!

(मम्मी के सामने खड़े हो जाते हैं।)

प्रोफ़ेसर—बहादुर ने आज फिर बच्चों को पीटा है?.... उसकी माँ तुमसे लड़ रही थी?

मम्मी—मेरा सिर न चाटो! उन्हीं से पूछो जाकर।

प्रोफ़ेसर—आखिर बात क्या हुई? मैं भी तो जानूं।

मम्मी—हट जाओ मेरे सामने से! दर्द के मारे मेरा सर यूं ही फट रहा है।

प्रोफ़ेसर—'इक्जरशन' पड़ गया तुम पर लगता है!

(मम्मी गुस्से में तनी भीतर चली जाती हैं।)

अजय—पापा, मम्मी मौसी जी के लिए भभूत लेने गयी थीं। बहरैइची जमादार है न पापा?

प्रोफ़ेसर—हाँ....हाँ !

(तभी अपने दरवाज़े से बहादुर निकलता है ।)

प्रोफ़ेसर—क्यों जी बहादुर ! तुमने आज फिर अजय को पीटा है ?

बहादुर—मैं नहीं बोलता आप लोगों से । जाइए जो करना है कर लीजिए मेरा ।

प्रोफ़ेसर—तमीज़ से बातें करना सीखो !

मम्मी—(भीतर से निकलती हुई) उसपर क्यों लाल-पीले होते हो ? अपना सर क्यों नहीं पीटते, जो यहाँ आ बसे । तुम्हें तो ठाट से कालेज की नौकरी करनी है न ? मरना तो मुझको है इस सड़े मुहल्ले में ! गली में आ बसे हैं, जैसे और कहीं कोई ठिकाना न था ।

प्रोफ़ेसर—पर डियर मेरी बात तो सुनो !

मम्मी—तुम रहो यहाँ, मैं कल ही बच्चों को लेकर मेरठ चली जाऊँगी । जब तक वहाँ मेरे माँ-बाप हैं, समझूँगी कि तब तक.... ।

प्रोफ़ेसर—मैं अभी पूछता हूँ बहादुर की माँ से ! इन्हें पता नहीं कि हमारी पोज़ीशन क्या है !

मम्मी—खूब जानते हैं हमारी पोज़ीशन । जिस दिन तुमने मुझे यहाँ ला बसा दिया, उसी वक़्त हमारी पोज़िशन ज़ाहिर हो गयी । सारी आदतें बच्चों की खराब हो गयीं । गन्दगी-पसन्द हो गये बच्चे । सदा रोनी सूरतें बनाकर घूमने

लगे। पढ़ने-लिखने से जी चुराने लगे। (रुककर) जयपुर से आज यहाँ कोई हमसे मिलने आये तो वह इन बच्चों को पहचान नहीं सकता कि ये वही बच्चे हैं। (रो पड़ती है) मेरी क़िस्मत फूट गयी!

प्रोफ़ेसर—(बिगड़ जाते हैं) क्या समझ रखा है इन लोगों ने हमें। क्यों बहादुर!....चलो, इधर तो आओ....सुनो मेरी बात।

बहादुर—सुन तो रहा हूँ!

(एकाएक भीतर से ठकुराइन निकलती हैं।)

ठकुराइन—क्यों रे बहादुर! तू फिर यहाँ आ गया?

बहादुर—फिर कहाँ जाऊँ? कोई डर पड़ा है इन लोगों का क्या? क्यों जाऊँ मैं यहाँ से। यह मेरा दरवाज़ा है, किसी के बाप का साझा नहीं है इसमें।

(ठकुराइन बहादुर के सिर पर तमाचा मार देती है।)

ठकुराइन—फिर बोलेगा? मारते-मारते तेरी....।

बहादुर—(क्रोध में) बोलूँगा....बोलूँगा....हज़ार बार बोलूँगा, हाँ।

ठकुराइन—लगता है इन लोगों के मारे घर ही छोड़ना पड़ेगा। जैसे दुनिया में इन्हीं को बाल-बच्चे हैं। यही शरीफ़ हैं; इन्हीं को सारी तमीज़ है जो बीबी की ओर से लड़ने आये हैं।

प्रोफ़ेसर—सुनो जी ठकुराइन ! हमें तुम लोगों की तरह लड़ने की आदत नहीं। मैं सिर्फ़ यह कहना चाहता हूँ कि अपने बच्चों को समझा दो। और खुद समझ लो कि हमें तुम लोगों से कोई सरोकार नहीं।

ठकुराइन—कौन रखता है सरोकार; दरवाज़े के सामने तुम्हारा घर न पड़ता तो मैं उधर ताकती तक नहीं। जितनी ही इनकी इज्ज़त करो, उतनी ही....।

(गली में से मुंशीजी निकलते हैं।)

मुंशीजी—मैंने तो पहले ही कहा था बहू तुमसे !

प्रोफ़ेसर—जी तुम कौन हो बीच में बोलनेवाले।

मुंशीजी—जी मैं एक आदमी हूँ।

मम्मी—लेकिन आसार नहीं हैं आदमी के !

मुंशीजी—अजी, औरत के तो आसार हैं कि वह भी नहीं।

प्रोफ़ेसर—यही है तुम्हारी तमीज़ ?

मुंशीजी—क्या ?....सुनो मास्टर साहब। ज़रा क़ायदे से पेश आया करो मुझसे, वरना ताला लगवा दूँगा घर में, हाँ ! मैं टिकट बाबू नहीं !

प्रोफ़ेसर—तेरी यह मजाल !

(गली में से खन्ना बाबू का प्रवेश।)

खन्ना—(पेट पर हाथ फेरते हुए, यह इनकी आदत है, और साथ ही साथ हँसते भी रहते हैं) क्या है मुंशीजी? जैरामजी की प्रोफ़ेसर साहब!

मम्मी—इन्हें देखकर तो मेरा सिर और फटने लगा।

(मम्मी भीतर चली जाती हैं।)

खन्ना—हम लोगों की सूरत ही ऐसी है, क्या बतायें मुंशीजी! (रुककर) क्या बात है मास्टर साहब?

प्रोफ़ेसर—आपसे मतलब?

खन्ना—क्यों नहीं मास्टर साहब! हम पड़ोसी जो हैं! मुंशीजी, बहादुर, ज़रा अदब लिहाज़ रखा करो मास्टर साहब के घर का! बड़े भाग्य से तो यह हमारे मुहल्ले में आये।

प्रोफ़ेसर—बको मत! मैं सबकी शरारतें समझता हूँ। मैं अभी जाता हूँ चेयरमैन साहब के पास। अजय ज़रा मेरी छड़ी और टार्च तो लाना! (अजय का प्रस्थान) क्या समझ रखा है इन लोगों ने?

खन्ना—हम तो मास्टर साहब आपकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं—इलिम क़सम। पूछ लीजिए मुहल्ले भर में। यक़ीन न हो तो मेरी बीबी से पूछ लीजिए।

प्रोफ़ेसर—तुम लोगों की यह मजाल। सारी दुपहरी तुम लोग हमारे घर का मज़ाक बनाते हो?....कोई कहता है मास्टर साहब ने प्रेम-विवाह किया है। कोई कहता है कि मास्टर ससुर के रुपये से पढ़े हैं। कोई कहता है, मैंने अपने

माँ-बाप को छोड़ दिया है। कोई कहता है, रात को मुझे नींद नहीं आती और मैं शराब पीता हूँ।

मुंशीजी—नहीं जी, मैं तो जानता हूँ आप शायरी करते हैं।

खन्ना—बुरी बात है मुंशीजी!

(उसी समय एक ओर से चौधरी क़यामत हुसेन आते हैं।)

चौधरी—(आते-आते) राम....राम! क्या जानें ये लोग किसी पढ़े-लिखे विद्वान को! क्या जानें क़दरदानी?

खन्ना—चौधरी, मूँगफली के क्या भाव हैं?

चौधरी—मुहल्ले के लोग तो बस सदा दूसरों के लिए ऐसे ही रहते हैं। कहीं कुछ मिल जाय, ढूँढ़ते ही रहते हैं।

प्रोफ़ेसर—(पुकार कर) अजय! क्या करने लगा भीतर?

अजय—(छड़ी टार्च लिये दौड़ा आता है) लीजिये पापाजी?

प्रोफ़ेसर—मैं जानता हूँ ऐसे लोगों की दवा। (जाते-जाते) अजय, अन्दर चलो, मैं अभी आया।

(प्रस्थान, अजय भीतर चला जाता है।)

चौधरी—तभी तो कोई शरीफ़ इस मुहल्ले में टिक नहीं पाता।

मुंशीजी—अजी, बड़े शरीफ़ के शहज़ादे देखे। तुम क्या जानो चौधरी क़यामत हुसेन! तुम तो दिन-रात तम्बाक़ू की दूकान पर बैठे रहते हो। ये लोग जब से यहाँ आये हैं, हमारी गली गन्दी हो गयी।

खन्ना—चुप....चुप....चुप! अरे, मम्मी की छोटी बहन, आयी है, क्या कहेंगी ?

चौधरी—कौन समझाये मुंशीजी को! अरे मुहल्ले में एक पढ़ा-लिखा विद्वान् है तो यहाँ रोशनी है, वरना अँधेरा है।

मुंशीजी—भइया ले जाओ यह चिराग़ अपनी दुकान पर! मार के गली गन्दी कर दी इन लोगों ने।

खन्ना—इतने-इतने मुर्गी के अण्डे। जहाँ देखो, वहीं अण्डों के छिलके।

मुंशीजी—अजी, इन लोगों की वजह से गली के कुछ लौंडे भी अण्डा खाने लगे।

खन्ना—और वह गोश्तवाला! जो यहाँ भरी खँचिया लिये आने लगा। हद हो गयी, कभी नहीं हुआ था ऐसा यहाँ।

ठकुराइन—(जो अब तक किवाड़ के पास खड़ी थी, बढ़कर) और वह रोज़ ठीक मेरे दरवाज़े के सामने खँचिया खोलकर बैठता है।

मुंशीजी—छी: छी: छी:! कभी नहीं हुआ ऐसा। मजाल क्या कभी चिकवा-क़साई यहाँ आया हो।

ठकुराइन— एक-एक बोटी गोश्त के लिए बच्चे लड़ते हैं आपस में, बाहर ला-लाकर खाते हैं।

खन्ना—और ये जो कुत्ते-बिल्लियाँ हैं, पूछो न इनकी, गोश्त की हड्डियों को इधर-उधर बिखेरते रहते हैं नालायक़।

ठकुराइन—और कौए जो हैं, एक दिन भगतिन बुआ के आँगन में हड्डियाँ गिरा आये। दो दिनों तक उपवास किया उन्होंने।

मुंशीजी—सुना चौधरी क़यामत हुसेन!

चौधरी—अजी छोटी-छोटी बातों का क्या झगड़ा? शरीफ़ आदमी के लिए कुछ सह लेना बुरी बात थोड़ी ही है!

ठकुराइन—देखो क्या बम्ब लेकर आते हैं मास्टर साहब! चेयरमैन साहब के यहाँ फरियाद लेकर गये हैं।

मुंशीजी—अजी बहू, रखो फरियाद। जैसे मास्टर साहब, उससे दूना चेयरमैन साहब। वह देखो न गली की म्युनिसिपल लाइट। ससुरी जैसे सदा बुझी रहती है। सारा तेल बेच खाते हैं। सब शराबी-कबाबी। ऊपर से राम-राम, भीतर से कसाई का काम। (रुककर) चेयरमैन साहब ने ही तो मास्टर साहब को यहाँ ला बसाया है।

ठकुराइन—चेयरमैन साहब का घर है, जिसे चाहें उसे बसायें।

मुंशीजी—अजी बहू तू का जाने है! यह घर था अनोखेलाल पटबर्धनदास के भतीजे गोवर्धनदास के लड़के मिठाईलाल का। उस बेचारे को चुंगी के एक मुक़दमे में फाँसकर चेयरमैन साहब ने इस मकान को अपनी रखैल औरत के नाम लिखा लिया।

खन्ना—म्युनिस्पेलिटी ज़िन्दाबाद। तभी तो मैं कहूँ कि चेयरमैन साहब के इतने घर क्यों हैं? हर सड़क, हर गली में चेयरमैन साहब का घर। कहीं लौंड़ों के नाम, कहीं बहुओं के नाम!

मुंशीजी—और कहीं रखैलों के नाम!

बहादुर—(जो अब तक चारपाई पर चुपचाप बैठा था) ज़रा धीरे-धीरे बोलो बाबा!

खन्ना—अमें दरवाज़ा तो बन्द है मास्टर साहब का!

बहादुर—(उठकर जैसे दिखाता हुआ) लेकिन सब खिड़कियों में छिपे बैठे हैं। नीता दरवाज़े में खड़ी होगी।

ठकुराइन—सबके सब चेयरमैन साहब के यहाँ पहुँच जाते हैं।

मुंशीजी—अजी, कौन परवाह करता है! आकर खड़े न हो जायँ चेयरमैन साहब, सात पुश्त की हुलिया जानता हूँ; उधेड़ कर रख दूंगा।

चौधरी—लेकिन फ़ायदा क्या इन बातों से! ज़रा मुहब्बत से काम लो न!

(गली की ओर जाने लगते हैं)

खन्ना—चले चौधरी क़यामत हुसेन?

चौधरी—हाँ भाई, पता नहीं क्यों, कमर में दर्द हो रहा है।

(प्रस्थान)

खन्ना—अरे ! मास्टर साहब तो लौट आ रहे हैं ।....वह आ गये ।

मुंशीजी — चेयरमैन साहब भी संग हैं ?

खन्ना—अजी, वह क्या आयेगा, कहीं पिये पड़ा होगा ।

(प्रोफ़ेसर सतसंगी का प्रवेश)

प्रोफ़ेसर—घबड़ाओ नहीं, कल होगा इसका फ़ैसला ।

खन्ना—चेयरमैन साहब मुक़दमे के सिलसिले में कहीं बाहर गये होंगे भाई ।

(प्रोफेसर साहब घर में जाते हैं ।)

प्रोफ़ेसर—(तुरंत भीतर से आवाज़ आती है) तुम लोग खिड़कियों पर क्यों बैठते हो ? पलँग पर बैठो, कुर्सियों पर बैठो...यह क्या तमाशा है !

(अजय प्रोफ़ेसर का हाथ पकड़े बाहर आता है ।)

अजय—पापा ! वह देखिये, जो खड़े हैं न ! वे सब कह रहे थे कि हम लोग मास्टर साहब को पीटेंगे ।

नीता—(सहसा बाहर निकलकर) बहादुर की माँ गाली बक रही थीं ।

प्रोफ़ेसर—क्यों ? तुम लोग गाली दे रहे थे ? क्यों बहादुर की माँ ! मैं एक-एक को हथकड़ी पहनवा के छोडूंगा, हाँ !

ठकुराइन—सुना !....देखा न मुंशीजी, सुना खन्ना बाबू ? यह पानी में आग ।

मुंशीजी—गज़ब के छोकड़े हैं भइया !

खन्ना—कमाल है।

बहादुर—झुट्ठे कहीं के।

(तेज़ी से मम्मी का प्रवेश)

मम्मी—किन देहातियों के मुँह लगे हो? चलो अन्दर चलो।

प्रोफ़ेसर—चलो आता हूँ।

मम्मी—चलो, सरला बुला रही है। तबीयत ठीक नहीं है उसकी।

(प्रोफ़ेसर, अजय और मम्मी का प्रस्थान)

मुंशीजी—यह सरला कौन?

खन्ना—मास्टर साहब की साली। बच्चा होनेवाला है।

मुंशीजी—ओ हो! ....अच्छा चलूँगा बहू!

(गली में बढ़कर एक ओर मुड़ जाते हैं।)

खन्ना—टिकट बाबू अब तक नहीं आये एक घंटा रात बीत गयी होगी।

ठकुराइन—आज पता नहीं कहाँ देर कर दी, आ जाना चाहिए था अब तक।

खन्ना—आओ बहादुर, चलो हमारे घर चलो।

ठकुराइन—हाँ, ले जाओ इसे!

(खन्ना के संग बहादुर जाता है। गली सूनी हो जाती है, ठकुराइन भीतर चली जाती हैं। कुछ क्षणों बाद गली से एक मूंगफली बेचनेवाला

निकलता है। बाहर से टिकट बाबू आते हैं, और सीधे अपने घर में जाने लगते हैं।)

मूँगफलीवाला—जैरामजी की टिकट बाबू!

टिकट बाबू—जैराम....जैराम!

(टिकट बाबू का प्रस्थान।)

मूँगफलीवाला—(आवाज़ देने लगता है) ताजी भुनी मूँगफली। चिनियाँ बादाम, जाड़े का मेवा है। खरी भूँजी मूँगफली है। चार आने पौआ है। बालू की भूनी है। ताजी मूँगफली है।

(भीतर से दौड़ता हुआ अजय निकलता है।)

अजय—मूँगफलीवाले! चलो इधर आओ।....बड़े बत्त-मीज़ हो, जल्दी क्यों नहीं आते?

मूँगफलीवाला—लीजिए हुजूर, आ गया, बिगड़िये नहीं। अभी बहुत कम उमर है आपकी। बहुत गुस्सा करने से जुकाम हो जावेगा।

अजय—बात मत करो!

मूँगफलीवाला—(मूँगफली देता हुआ) जल्दी कीजिये जल्दी हाँ,....पैसे दीजिये पैसे, तूफ़ान आनेवाला है, आँधी और पानी...।

(पैसा लेकर चल देता है, उसकी आवाज़ अभी गली में सुनाई पड़ रही है। अजय अपने घर में जाकर भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लेता है। कुछ क्षणों बाद अपने दरवाज़े से टिकट बाबू का प्रवेश।)

टिकट बाबू—(आवेश में) कौन है वह शरीफ़ज़ादा! ज़रा बाहर आकर मुझे अपना मुँह तो दिखाए। यह दूध का धुला घर में क्यों बैठा है?

(बन्द दरवाज़े की साँकल बजाते हैं।)

टिकट बाबू—तहज़ीब के पिल्ले! घर में से निकलता क्यों नहीं? निकल घर में से! मँगवा हथकड़ी-बेड़ी हमारे लिए!

(दरवाज़ा खुलता है, प्रोफ़ेसर का प्रवेश)

प्रोफ़ेसर—(निकलकर) क्यों हद किये डाल रहे हैं आप? आखिर आपकी मंशा क्या है?

(प्रोफ़ेसर अन्दर चले जाते हैं)

टिकट बाबू—रहना हो तो मुहल्ले में कायदे से रहो, वरना रास्ते न बन्द कर दूँ तो ठाकुर छैलबिहारी सिंह नाम नहीं।

ठकुराइन—अच्छा, अब चुप रहो।

(गली में मुंशीजी आते हुए दिखाई देते हैं)

ठकुराइन—चलो, अब नहीं कुछ बोलेंगे मास्टर साहब।

मुंशीजी—जैराम जी की टिकट बाबू!

टिकट बाबू—राम-राम मुंशीजी (रुककर) बड़े तहज़ीबदार बनके आये हैं।

मुंशीजी—तहजीबदार ही नहीं ठाकुर साहब? अप टू डेट, शरीफ़।

(गली में से खन्ना बाबू और बहादुर का प्रवेश)

खन्ना—बड़ा शोरगुल मचा टिकट बाबू !....अरे अन्दर चलकर बैठो आँधी-पानी आनेवाला है। चलो भीतर बैठें न !

टिकट बाबू—अजी अब मैं यहीं बाहर ही रहा करूँगा। सोना-खाना सब यहीं करूँगा।

(सब हँस पड़ते हैं)

मुंशीजी—जी हाँ, तभी तो हम लोग तहज़ीबदार कहलायेंगे।

खन्ना—तहज़ीबदार ही नहीं—अपटूडेट ; शरीफ़ !

मुंशीजी—बच्चों से कह दो बहू, तुम लोगों को भी वे पापा और मम्मी कहा करें। क्यों रे बहादुर ?

(बहादुर भागकर भीतर चला जाता है।)

खन्ना—क्या कमाई करते हो टिकट बाबू ! अरे घर में दो-चार कप प्याले, काँटे-छुरी-चम्मच तो रख दो अब !

टिकट बाबू—मारा सारे मुहल्ले का सत्यानाश कर दिया।

मुंशीजी—मम्मी जो बी.ए. पास हैं।

खन्ना—अजी मुंशीजी, तुम्हें क्या पता ! एम.ए. का पहला साल भी पास किया है।

मुंशीजी—चाहे जो पास हों, मुहल्ले की कुछ लड़कियाँ इनकी देखा-देखी उल्टे-पल्ले की साड़ियाँ ज़रूर पहनने लगीं।

खन्ना—और फिल्मी गाने जो गाने लगीं। मास्टर साहब का रेडियो तो सिलोन रेडियो है जी।

ठकुराइन—अच्छा चलो अब अपने-अपने घर। आसमान की तरफ़ तो देखो।

खन्ना—आय हाय....आँधी-पानी! क्या बज रहे हैं टिकट बाबू?

टिकट बाबू—पौने नौ के करीब हो रहे हैं।

(भीतर से प्रोफ़ेसर साहब निकलते हैं।)

प्रोफ़ेसर—आप लोगों से प्रार्थना है कि आप यहाँ शोर न करें, अजय की मौसी की तबीयत अच्छी नहीं है।

(प्रोफ़ेसर साहब अपने घर में जाते हैं।)

खन्ना—मुंशीजी, चलो चलें! नहीं अभी मम्मी निकलेंगी!

मुंशीजी—अजी बहुत देखी है....!

(खन्ना के संग गली में प्रस्थान, टिकट बाबू के संग ठकुराइन का अपने घर में जाना। क्षणभर बाद गली में दही-रबड़ीवाले की आवाज़ उठती है। अजय तेज़ी से अपने दरवाज़े से निकलता है।)

अजय—(आवाज़ देता है) दही-रबड़ीवाले! चलो इधर आओ!

(नीता भी निकलती है।)

नीता—मम्मी! मैं भी लूँगी रबड़ी।

अजय—पापाजी, मैं दही लूँगा।

नीता—क्यों शोर करते हो? तुमने तो सुबह दही-बड़ा ख़रीदा था।

अजय—तुमने भी तो चाट खायी थी।

प्रोफ़ेसर—(तेज़ी से निकलकर) मत शोर करो! शरम नहीं आती तुम लोगों को, तुम्हारी मौसी की तबीयत ख़राब है और तुम लोग.... ।

नीता—पापा, यही अजय शोर करता है ।

अजय—मैं दही लूंगा पापाजी !

मम्मी—(प्रवेश कर) हाय! कितने भुक्कड़ हो गये मेरे बच्चे यहाँ आकर। जयपुर में थे, बाज़ार की चीज़ का नाम तक नहीं लेते थे। कभी जानते भी न थे कि ये खोंचेवाले, फेरीवाले क्या होते हैं ।

प्रोफ़ेसर—यहाँ तो उसकी आवाज़ सुनते ही चीखने लगते हैं, जैसे कभी कुछ खाया-पिया ही नहीं ।

मम्मी—क्या कहूँ मैं? शाम को तो मैंने इनके लिए गजक और मूंगफली ख़रीद दी थी! क्यों अजय?....नीता....।

(फिर दही-रबड़ीवाले की आवाज़)

अजय—देखिये मम्मी! बहादुर मुझे मुँह बना-बनाकर चिढ़ा रहा है। मुझे पैसे दो मम्मी! मैं दही लूंगा, हाँ! (पुकार उठता है) ओ दही-रबड़ीवाले ।

प्रोफ़ेसर—(गुस्से में अजय को एक चपत देकर) नालायक़ कहीं के! तुम लोगों को तो बन्द कर दे कहीं; जहाँ हवा-पानी भी न मिले ।

(अजय रोता है ।)

मम्मी—अभी इस जेलख़ाने में बन्द करने से जी नहीं भरा क्या? हाय मेरी क़िस्मत फूट गयी। (अजय को चिपका लेती है) रोओ नहीं बेटे! तुम्हारी मौसी की तबीयत ठीक होते ही हम लोग यहाँ से मेरठ चले जायेंगे। करें अपना राज्य यह अकेले यहाँ!

प्रोफ़ेसर—चली जाओ न मेरठ!

मम्मी—अच्छा लड़ो नहीं मुझसे!

(फिर गली में दही-रबड़ीवाले की आवाज़)

प्रोफ़ेसर—(गुस्से से बढ़कर) सुनो जी दही-रबड़ीवाले! मत आया करो इधर! कोई अकल न तमीज़! रात के नौ बज रहे हैं, इस समय यह यहाँ पों-पों करने चले हैं। (डाँटते हुए) चले जाओ यहाँ से अगर अपनी खैरियत चाहो।

(दही-रबड़ीवाले की आवाज़ गली में दूर चली जाती है।)

प्रोफ़ेसर—खबरदार....अब कभी जो इधर आया!

अजय—मम्मी दही-रबड़ी! (मचलकर रोता है) दही-रबड़ी!

(आँधी आ जाती है; एक ओर से मूँगफलीवाला तेज़ी से भागता हुआ गली में जाने लगता है।)

मूँगफलीवाला—(आवाज़ देता हुआ) आँधी....पानी! आ गयी आँधी! आ गयी आँधी! (प्रस्थान)

(प्रोफ़ेसर साहब का परिवार भीतर भागता है। भीतर से दरवाज़ा बंद होता है। आँधी के संग तेज़ वर्षा। ठकुराइन तेज़ी से आकर अपने

दरवाज़े की चारपाइयों को भीतर ले जाती हैं! कुछ क्षणों बाद अपने दरवाज़े से मम्मी निकलती हैं। इधर-उधर देखती हैं और एकाएक दौड़कर ठकुराइन के दरवाज़े पर आती हैं।)

मम्मी—ठकुराइन! ओ जी ठकुराइन! बहादुर की माँ!

(ठकुराइन का प्रवेश)

ठकुराइन—क्या है बहू?

मम्मी—ज़रा चलकर सँभाल लो, अजय की मौसी की तबीयत बहुत ख़राब हो रही है।

ठकुराइन—हाँ....हाँ....चलो!

(भीतर से टिकट बाबू की आवाज़ आती है)

ठकुराइन—चलो मैं आ रही हूँ, अभी आयी!

(मम्मी का प्रस्थान, ठकुराइन भीतर लौटती है, फिर बाहर निकालकर जैसे ही बढ़ने को होती है, टिकट बाबू का प्रवेश।)

टिकट बाबू—कहाँ जा रही हो इस तूफ़ान में?

ठकुराइन—टोक दिया न! बड़ी बुरी आदत है तुम्हारी।

टिकट बाबू—वह तो है ही, लेकिन इस आफ़त में जा कहाँ रही हो?

ठकुराइन—अजय की मौसी की तबीयत बहुत ख़राब हो गयी है। दर्द से बेहोश हो रही है। ज़रा देखने जा रही हूँ।

टिकट बाबू—इसीको गँवार औरत कहते हैं। तभी तो अजय के पापा और मम्मी तुम जैसी औरतों को घास तक नहीं डालते!

ठकुराइन—अजी चुप रहो तुम ! तुम मर्दों को क्या मतलब इन बातों से । यह हम लोगों का मामला है ।

टिकट बाबू—है तो मामला तुम लोगों का । पर यह न कहना कि अजय की मम्मी ने तुम्हारे सर का बाल नोचा !

ठकुराइन—क्या बकते हो जी ! मम्मी एकदम से खराब ही हैं क्या । याद है, अपनी शकुन्तला बेटी जब बीमार हो गयी थी । तुम तो ड्यूटी पर बाहर गये थे । रात-रात भर मम्मी बैठी रहती थीं शकुन्तला के सिरहाने !

टिकट बाबू—तो जाओ तुम भी बैठो न !

ठकुराइन—मम्मी खुद शकुन्तला को लेकर मुरादाबाद अस्पताल में गयी थी ! तुम्हें क्या पता किसके भीतर क्या है ? तुम तो बाहर ही बाहर देखते हो न !

(चली जाती हैं, मम्मी के घर में प्रवेश, टिकट बाबू चुप खड़े रह जाते हैं । क्षण भर बाद ठकुराइन अपने संग अजय, नीता को लिये आती है और अपने घर में जाने लगती है ।)

टिकट बाबू—अब यह क्या है ? क्या तूफ़ान है यह ?

ठकुराइन—चुप रहो जी ! (पुकारती है) शकुन्तला, ओ शकुन्तला ।

आवाज़—(भीतर से) आयी अम्मा !

ठकुराइन—ले सम्हाल इन बच्चों को !

(बहादुर का प्रवेश)

ठकुराइन—बहादुर! ले जा इन्हें अपने संग भीतर! भूखे हैं, इन्हें खाना खिला शकुन्तला!

बहादुर—चलो अजय, नीता चलो! एक संग खाना खायेंगे।

(बहादुर के संग अजय-नीता का प्रस्थान)

टिकट बाबू—पागल तो नहीं हो गयी हो तुम?

ठकुराइन—पागल होगे तुम! जाओ अन्दर बच्चों को खाना खिलाओ! मैं अभी आयी। पता है? अजय की मौसी को बच्चा होनेवाला है! (हँसती है, फिर जैसे गा पड़ती है) 'जनमें हैं कुँअर कन्हैया, अवध में बाजे बधैया।'

(दौड़ी हुई अजय के घर में भाग जाती है। टिकट बाबू खड़े रह जाते हैं। कुछ क्षणों बाद भीतर से बहादुर दौड़ा आता है।)

बहादुर—बाबूजी....बाबूजी! अजय और नीता को मैंने सारी दही-रबड़ी दे दी....। चलिये आप भी रोटी खा लीजिए।

टिकट बाबू—वे लोग खाना खा रहे हैं?

बहादुर—जी हाँ, खाना खा रहे हैं।

टिकट बाबू—जाओ, तुम भी खा लो उनके संग।

(बहादुर अन्दर भाग जाता है। टिकट बाबू फिर अकेले खड़े रह जाते हैं। कुछ देर के उपरान्त हँसती हुई प्रसन्नमन ठकुराइन निकलती हैं।)

ठकुराइन—सुना जी, बच्चा पैदा हुआ है अजय की मौसी को!

टिकट बाबू—अच्छा.... !

ठकुराइन—(पुकारती हुई अपने घर में चली जाती है) शकुन्तला ! ला तो ढोलक कहाँ है........।

(अन्दर से ढोलक लिये भागती हैं और मम्मी के घर में अदृश्य हो जाती हैं। और कुछ क्षणों बाद ढोलक पर यह गीत उभरता है।)

जनमें हैं कुंअर कन्हैया, अवध में बाजे बधैया।
ऊँचे चढ़िके धगरिन पुकारे
कोई है नार छिनैइया, अवध में बाजे बधैया।
दसरथ के चार बेटा हुए हैं
केकर होला बड़ैइया, अवध में बाजे बधैया।
राम से लछमन, भरत शत्रुघन
रामा के होला बड़ैइया, अवध में बाजे बधैया।

(इसी संगीत पर धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।)

दूसरा दृश्य

[फिर वहीं, उसी स्थिति में पर्दा उठता है। रात के नौ बजे का समय है। चारपाई पर सिर झुकाये ठकुराइन बैठी हुई है—चुप चिन्तित, जैसे रो रही हो, गली में मुंशीजी आते हैं।]

मुंशीजी—ठकुराइन! बहादुर की माँ!.......ओ बहू! क्या बात है, बोलती क्यों नहीं? मम्मी के घर से फिर कुछ हुआ है क्या?........बोलो, क्या बात है? मुझे बाताओ न!

(ठकुराइन बिना कुछ बोले चुपचाप अन्दर चली जाती है।)

मुंशीजी—अरे! क्या बात हुई? (गली की ओर आवाज़ देते हैं) खन्ना बाबू! ओ जी खन्ना बाबू!

(चौधरी क़यामत हुसेन निकलते हैं।)

चौधरी—किसे पुकार रहे हैं मुन्शीजी?

मुंशीजी—कोई है ही नहीं यहाँ!

चौधरी—खन्ना बाबू सो गये होंगे कि.... ।

मुंशीजी—ठकुराइन चुपचाप यहाँ बैठी थीं। जैसे लगा कि रो रही थीं। मैंने बुलाना चाहा, वह घर में चली गयीं, कुछ बताया नहीं, पता नहीं क्या बात है!

चौधरी—कुछ होगा मुंशीजी! घर-गृहस्थी है, पता नहीं क्या-क्या कहाँ-कहाँ होता रहता है!

(आगे बढ़ने लगते हैं।)

मुंशीजी—दुकान जा रहे हो चौधरी?

चौधरी—नहीं, ज़रा स्टेशन की ओर जा रहा हूँ!

(प्रस्थान, कुछ क्षणों बाद सामने से टिकट बाबू और बहादुर का प्रवेश, बहादुर भीतर जाता है।)

मुंशीजी—राम-राम टिकट बाबू!

टिकट बाबू—राम-राम मुंशीजी।

मुंशीजी—ड्यूटी से लौट आये क्या? क्या बात है बहादुर?

टिकट बाबू—छुट्टी लेकर आ रहा हूँ मुंशीजी! बहादुर मुझे बुलाने गया था।

मुंशीजी—बात क्या है? शुभ तो है न?

टिकट बाबू—शुभ तो नहीं है मुंशीजी! मम्मी की छोटी बहन आयी थीं न, अजय की मौसी!

मुंशीजी—जी हाँ, जिन्हें अभी परसों रात को बच्चा पैदा हुआ है।

टिकट बाबू—जी हाँ, आज सुबह उसका स्वर्गवास हो गया।

मुंशीजी—(दुख से) च....च....च....च राम....राम! ओ हो बड़ा बुरा हुआ!

(दरवाज़े पर आ ठकुराइन निःशब्द रो रही हैं।)

टिकट बाबू—बहुत कमज़ोर था बच्चा। अपने पूरे दिन के पहले ही हो गया था। शायद आठ ही महीने में!

मुंशीजी—सब ईश्वर की माया है टिकट बाबू, और कुछ नहीं। जिसे चाहे जिलाये, जिसे चाहे मारे! (रुककर) लेकिन यह बहादुर की माँ इस तरह क्यों रो रही हैं?

टिकट बाबू—कुछ न पूछिये मुंशीजी! यहाँ तो ग़ज़ब की बात पैदा कर दी लोगों ने!

मुंशीजी—(आश्चर्य से) अच्छा! अरे!!

टिकट बाबू—मम्मी का कहना है कि ठकुराइन ने बच्चे पर जादू कर दिया, तभी वह चटपट मर गया। और मास्टर साहब—प्रोफ़ेसर सतसंगी का कहना है कि ठकुराइन ने गन्दे हाथों से बच्चे को छुआ था; उसे सेप्टिक या 'टिटनेस' हो गया।

मुंशीजी—आहा....आ....! ग़ज़ब हो गया यह तो!

टिकट बाबू—इस गँवार औरत को यही दण्ड चाहिए! मान न मान मैं तेरा मेहमान! ठीक कहा है लोमड़ी चली सगुन दिखावै, आपन सर कुत्तन से नोचवावै। (रुककर) खड़ी रोती क्या हो? आओ और प्रीति दिखा आओ न! मम्मी....मम्मी.... मम्मी बड़ी अच्छी हैं। ढोलक लेकर और मंगल सोहर गा आओ न!

मुंशीजी—बहू का क्या दोष इसमें टिकट बाबू!

टिकट बाबू—अब पता लगा कि नहीं कि वे लोग क्या हैं और तुम क्या हो?

ठकुराइन—(रुँधे कण्ठ से) आज मैं जादू-टोनावाली हो गयी!

टिकट बाबू—अरे! प्रीति का कुछ तो दण्ड भोगोगी न!

मुंशीजी—टिकट बाबू! बडे अजीब हैं ये लोग! बड़ा बुरा हुआ!

टिकट बाबू—इस गँवार औरत की वजह् से आज मेरी गर्दन नप गयी मुंशीजी! बारहवाँ मना किया इसे, लेकिन उस आँधी-तूफ़ान में भी यह् न रुकी! सारी रात दौड़ती भागती रही। और अब बैठकर रो रही है। (चिढ़कर) जैसे तेरे रोने का असर उनपर पड़ेगा ही। अरे वे आदमी नहीं, नासूर हैं नासूर!

(अपने दरवाज़े से प्रोफ़ेसर का प्रवेश)

प्रोफ़ेसर—क्या कहा! ज़रा ज़बान सम्हाल कर बोलो! कोई तमीज़ है कि नहीं! हमारे ऊपर इतनी बड़ी आफ़त पड़ी, और तुम मुझे खरी-खोटी सुनाने खड़े हो!

टिकट बाबू—जी हाँ मास्टर साहब, आप लोगों ने तो हम पर फूल बरसा दिया! हम सीधे हैं, तभी तुम्हारी नज़रों में हम गन्दे और बत्तमीज़ हैं। जादू टोना डालते हैं हम। लेकिन एक बार फिर से सोच लो मास्टर साहब अपनी ज़िन्दगी के बारे में, जो तुम जी रहे हो, वह तुम्हारी ज़िन्दगी नहीं है, नकल है, नाटक है, दिखावा है।

(प्रोफ़ेसर साहब घर में लौट चुके हैं)

मुंशीजी—छोड़ो ठाकुर साहब! सिर मत धुनो भाई! जब तीर ही कमान से निकल गया तो....छोड़ो! चुप रहो ठकुराइन....भूल जाओ भूल! रोने से पसीजनेवाले ये लोग नहीं।

(उसी क्षण मूंगफलीवाला गली में से आवाज़ देता आता है।)

मूँगफलीवाला—ताजी भुनी मूँगफली ! चिनियाँ बदाम ! खरी-भुनी मूँगफली ! मौसम का मेवा ! बालू की भुनी !

अजय—(तेज़ी से निकलकर) चलो इधर मूँगफलीवाले !

मूँगफलीवाला—लीजिये....लीजिये सरकार !

(अजय मूँगफली लेने लगता है, तभी धीरे से बहादुर का प्रवेश)

बहादुर—मुझे भी देना मूँगफलीवाले ! (रुककर) अबे बत्तमीज़ जल्दी क्यों नहीं देता ?

टिकट बाबू—इधर तो आ बहादुर ! क्यों कहा बत्तमीज़ तूने ?

(एक चाँटे की मार, ठकुराइन दौड़कर पकड़ लेती है ।)

ठकुराइन—खबरदार जो अब मेरे बेटे को मारा !

टिकट बाबू—अजय की नकल करेगा तू ? खाल उधेड़कर रख दूँगा !

मुँशीजी—राम....राम ! छोड़िये भी टिकट बाबू !

टिकट बाबू—कहाँ मिला तुझे यह पैसा ? किसने दिया ? सच....सच बता !

ठकुराइन—मैंने दिया....मैंने दिया ।

बहादुर—यह इकन्नी मुझे रास्ते में पड़ी मिली !

(अजय और मूँगफलीवाले का चुपके से प्रस्थान)

टिकट बाबू—पड़ी मिली है ! यह झूठ ।

(मारने लगते हैं, माँ और मुँशीजी रक्षा करते हैं ।)

बहादुर—आपकी पैंट से चुराई है।

टिकट बाबू—यह झूठ और चोरी !

(मारने दौड़ते हैं, माँ बहादुर को घर में खींच ले जाती हैं।)

टिकट बाबू—मेरे बच्चे कितने भी गन्दे, बत्तमीज़ लड़ाकू हों, मुझे मंजूर है, लेकिन ये चोरी करें, झूठ बोलें, मैं इन्हें ज़िन्दा नहीं रहने दूँगा। मार के मर जाऊँगा इन्हीं के संग। (रुककर) मुंशीजी ! मुझे पता है झूठ-चोरी के कीड़े कहाँ मिले हैं मेरे बच्चे को !

मुँशी जी—ईश्वर बचाये इन लोगों से !

टिकट बाबू—अब मैं यहाँ एक क्षण नहीं रह सकता मुंशीजी ! छोड़ दे रहा हूँ यह जगह !

मुंशीजी—क्या बच्चों की तरह बात करते हो ठाकुर साहब ! ऐसे कोई छोड़कर भागता है ! हिम्मत से काम लो !

टिकट बाबू—मेरे पास इतनी हिम्मत नहीं ! (रुककर) अच्छा नमस्ते मुंशीजी !

(अन्दर प्रस्थान)

मुंशीजी—लेकिन अभी ऐसा न करना ठाकुर साहब ! मैं राय दूँगा तुम्हें ! सुबह आऊँगा हाँ !

(गली में प्रस्थान। कुछ क्षणों के बाद भीतर से ठकुराइन निकलती हैं।)

ठकुराइन—(मम्मी के बंद दरवाज़े पर दस्तक) अजय की मम्मी !....खोलो बहू !

मम्मी—कौन ? (दरवाज़ा खोलकर बाहर आती है) ठकुराइन ! क्या है ?....बोलो ! बोलो न ! क्या है ?.... बोलो ठकुराइन !

ठकुराइन—हम लोग जा रहे हैं यहाँ से !

मम्मी—नहीं....नहीं....ऐसा नहीं ठकुराइन जीजी !

ठकुराइन—हमारी भूल-चूक माफ़ करना बहू ।

(मम्मी चुप हैं, आँचल से आँखें पोंछती हैं ।)

ठकुराइन—हम लोग रेलवे क्वार्टर में जा रहे हैं बहू ! आना, भेंट होगी ! (रो पड़ती है) ज़रूर आना !

(दोनों खड़ी निःशब्द रो रही हैं, भीतर से टिकट बाबू का प्रवेश)

टिकट बाबू—अभी पेट नहीं भरा तुम्हारा ?....चलो इधर !

(ठकुराइन के संग खिंची हुई मम्मी भी चली आती हैं, तभी अपने भीतर से प्रोफ़ेसर का प्रवेश ।)

प्रोफ़ेसर—वहाँ क्या कर रही हो ? चलो इधर !

(दोनों औरतें चुप खड़ी एक दूसरे को देख रही हैं, प्रोफ़ेसर और टिकट बाबू अपने-अपने दरवाजे पर खड़े हैं ; तेज़ी से पर्दा गिरता है ।)

बन्दी

श्री जगदीश चन्द्र माथुर

पात्र

हेमलता

राय साहब

चेतराम

बालेश्वर

आया

बीरेन

करम चन्द

लोचन

बन्दी

[उत्तर भारत के एक गाँव में एक बड़े घराने के बंगले का बगीचा।
पृष्ठभूमि में मकान की झलक। मकान में जाने के लिए बायीं तरफ़ से
रास्ता है और बाहर जाने के लिए दाहिनी तरफ़। समय चैत्र पूनो की
संध्या। चाँदनी का साम्राज्य गोधूलि वेला में ही फैल रहा है।
राय तारानाथ हेमलता के साथ एक स्थान की ओर संकेत करते
हुए आते हैं।]

राय साहब—और यही वह स्थान है जहाँ तुम्हारी माँ
पूजा के बाद तुलसी जी को पानी चढ़ाने आती और मैं.......

हेमलता—आप तो नास्तिक रहे होंगे पापा ?

राय साहब—तुम्हारी माँ को चिढ़ाने के लिए। लेकिन
उसकी श्रद्धा अडिग थी। और तभी मैं बगीचे के किसी कोने
में....शायद वही तो....वह देखती हो न पत्थर ?

हेमलता—याद है।

राय साहब—क्या याद है ?

हेमलता—कि उस पत्थर पर बैठकर आप मुझे सितारों की
कथा सुनाया करते थे। (रुककर मानो कुछ याद आयी हो)
पापा, कलकत्ते में सितारों-भरा आसमान मानो मेरे मन के कोने

में दुबका पड़ा रहता था, लेकिन यहाँ (स्निग्ध स्वर) गाँव आते ऐसे ही खिला पड़ता है, जैसे आज इस चैत्र पूनो की चाँदनी !

राय साहब—आसमान भी खिला पड़ता है और तुम्हारा मन भी बेटी ! (हँसता है। कुछ रूककर) बजा क्या है ? (आहिस्ता से) गाड़ी का तो वक़्त हो गया होगा ?

हेमलता—आज भी पापा। (रूठकर) समझते हैं कि मुझे यूँ तो चाँदनी भाती ही नहीं, सिर्फ़........

राय साहब—(बात पूरी करते हुए) बीरेन की इन्तज़ारी की घड़ी में ही खिली पड़ती है। (हँसते हैं।) बुराई क्या है ? बीरेन भला लड़का है, इसलिए तो यहाँ आने का न्योता दिया है उसे। देखूँ गाँव की आभा उसके मन चढ़ती है या नहीं ?

हेमलता—जैसे जनम से ही शहर की धूल फाँकी हो।

राय साहब—वही समझो। कहता था न कि बचपन में पिता के मरने पर बरेली चला गया और उसके बाद लखनऊ और तब कलकत्ता....

हेमलता—मुझे भी तो आप बचपन में ही कलकत्ते ले गये और अब लाये हैं गाँव पहली बार....

राय साहब—मैं तुम्हें लाया हूँ बेटी या तुम मुझे ?

हेमलता—पापा, आते ही मैं तो यहाँ की हो गयी। न जाने कितने युगों का नाता जुड़ गया। (उल्लासपूर्ण स्वर) यह हमारा घर, पुरानी कोठी, जिसकी दीवार में पड़ी दरारें मुस्कान भरे मुखड़े की सिलवटे हैं ! ये दूर-दूर तक फैले हुए खेत, जिन

पर दबे पाँव दौड़ते-दौड़ते हवा उनपर निछावर हो जाती है और यह चाँदनी जो जितनी हँसती है उतना ही छिपाती भी है। (तन्मय) कलकत्ते में चैत्र की चाँदनी और ईद के चाँद में कोई अंतर नहीं होगा। लेकिन यहाँ, झोपड़ियों पर बाँस के झुरमुटों में, खेत-खलिहान पर, बे-हिसाब, बे ज़ुबान, बे-झिझक चाँदनी की दौलत बिखरी पड़ रही है। ओह, पापा!

(अपरिमित सुखानुभूति का मौन)

आया — (नेपथ्य में) हेम बीबी चाय तैयार है!

राय साहब—चाय! इतनी देर में?

हेमलता—आया की ज़िद! कहती है सर्दी हो चली है, थोड़ी चाय पी लो। (मकान की ओर रुख करके) यहीं ले आओ आया, बग़ीचे में। और दो मूढ़े भी!

राय साहब—(स्मृति के सागर में उतरते हैं।) सोचता हूँ कि अगर तुम्हारी माँ तुम्हारी तरह बोल या लिख पाती तो वह भी कवि या तुम्हारी तरह आर्टिस्ट होती।

हेमलता—अगर माँ बोल पाती तो आपको कलकत्ते न जाने देती!

राय साहब—रोका था। दो चार आँसू भी गिराये थे। लेकिन क्या तुम सच मान सकती हो हेम, कि मैं न जाता? कैसे न जाता? सारे केरियर का सवाल था। यह ज़मींदारी उन दिनों भरी-पुरी थी, लेकिन आख़िर को ले न डूबती मुझे अपने साथ!

हेमलता—काश इस गाँव में ही हाईकोर्ट होता! यहीं आप वकालत करते और यहीं जज हो जाते!

राय साहब—वाह बेटी! तब तो यहीं वह बड़ा अस्पताल भी होता जहाँ तुम्हारी माँ की लम्बी बीमारी का इलाज हुआ था और यहीं वह कालिज और हाई-स्कूल होते, जहाँ तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा हुई और यहीं वे थियेटर सिनेमा....

(आया का प्रवेश। हाथ में ट्रे। अपनी धुन में बात करती है।)

आया—यही तो मैं कहती थी सरकार! इस देहात में कैसे हेम बिटिया की तबियत लगेगी। सनीमा नहीं, थेटर नहीं, क्लब नहीं। (पीछे की तरफ़ देखकर पुकारती हुई) अरे ओ चेतुआ, किधर ले गया मेज़?....देहात का आदमी, समझ भी तो मोटी है! (चेतुआ एक हाथ में छोटी-सी टेबल और एक में मूढ़ा लिए हुए आता है।) उधर रख....हाँ बस (मेज़ पर चाय की ट्रे रख देती है। चाय बनाती हुई।) आपके लिए भी बनाऊँ सरकार?

राय साहब—(कुछ अनिश्चित से मूढ़े पर बैठते हुए) मे....रे....लिए........

आया—(चेतुआ को खड़ा देखकर) अरे खड़ा क्यों है। दूसरा मूढ़ा तो उठा ला दौड़कर।

चेतराम—(जाते हुए) अभी लाया जी!

आया—(प्याला देती हुई) लो बीबी जी, गर्म कपड़ा नहीं पहना तो गर्म चाय तो लो।

हेमलता—तुम तो आया समझती हो कि जैसे हम बरफ़ की चोटी पर बैठे हैं !

आया—(दूसरा प्याला बनाते हुए) नहीं हेम बीबी, देहात की हवा शहरवालों के लिए चंडी होती है चंडी !

हेमलता—तुम भी तो देहात ही की हो आया ।

आया—अब तीन चौथाई ज़िन्दगानी तो गुज़र गयी आप लोगों के संग (चाय का प्याला राय साहब की ओर बढ़ाते हुए) लीजिए सरकार ! (राय साहब को देख, कुछ चौंककर) अरे !

राय साहब—(प्याला लेते हुए) क्यों, क्या हुआ ?

आया—आप भी सरकार गजब करते हैं । यहाँ खुले में आप यों ही बैठे हैं ।

(घर की तरफ़ तेज़ी से बढ़ती है ।)

हेमलता—किधर चली आया ?

आया—(जल्दी से) ड्रेसिंग गाउन लेने ।....साहब का बेरा कलकत्ते से आता तो ऐसी गफ़लत क्यों होती ?

(चली जाती है ।)

राय साहब—हा हा हा (ठहाका मारते हैं ।) गुड ओल्ड आया ! (चाय पीते हुए) समझती है कि सारी दुनिया नादान बच्चों का झुंड है और अकेली वह माँ है ।

हेमलता—क्या सच उसे देहात नहीं सुहाता पापा ? मैं नहीं मान सकती । मगर (चेतू मूढ़ा ले आया है ।) यहीं रख दो मूढ़ा, मेज़ के पास ।

राय साहब—मुझे ये पुराने मूढ़े पसन्द हैं। कमर बिलकुल ठीक एंगिल में बैठती है। (चेतू को रोककर) ए, क्या नाम है तुम्हारा ?

चेतराम—जी, चेतराम !

राय साहब—कहार हो ?

चेतराम—मुसहर हूँ सरकार !

राय साहब—मुसहरों की तो एक वस्ती थी करीब ही कहीं, गन्दी-सड़ी। बाप का नाम ?

चेतराम—कमतूराम !....अब गन्दगी नहीं है सरकार !

राय साहब—अरे, तू कमतू का लड़का है ?

हेमलता—क्यों नहीं है अब गन्दी बस्ती ?

(आया का प्रवेश)

आया—लीजिये सरकार ड्रेसिंग गाउन, जब बैठना ही है यहाँ खुले में तो....अरे तू यहीं खड़ा है चेतू ?

राय साहब—(ड्रेसिंग गाउन पहनते हुए) आया, यह तो उसी कमतू का लड़का है जो पन्द्रह बरस पहले यहाँ........

आया—हाँ, सरकार मैंने तो उसे ही बुलाया था, मगर उसने लड़के को भेज दिया। ख़ैर, जाने-पहचाने का लड़का है। चोरी-ओरी करेगा तो पकड़ना मुशकिल नहीं।

हेमलता—तुम तो आया—

आया—अरे हाँ बीबी जी, अब ये देहाती सीधे-सादे नहीं रहे। हमारे-तुम्हारे कान काटते हैं। चेतू चाय की ट्रे लेकर जल्दी आना। पलंग-वलंग ठीक करने हैं। (चलते-चलते) देखूँ बावर्ची ने खाना भी तैयार किया कि नहीं।

राय साहब—डीयर ओल्ड आया।

(आया जाती है। राय साहब चाय की चुस्की लेते हैं)

हेमलता—चेतराम !

चेतराम—जी बीबी जी।

हेमलता—मुसहर बस्ती में अब गन्दगी नहीं है ! क्यों ?

चेतराम—बस्ती ही बह गयी सरकार !

राय साहब—बह गयी ?

चेतराम—पिछले साल बहुत ज़ोर की बाढ़ आयी। हमारी तो बस्ती ही ख़तम हो गयी। चालीस घर थे। मेरे दादा के पास धनहर खेत था आठ कट्ठा। जैसे-तैसे महाजन से छुड़ाया। वह भी बालू में पड़ गया। और कान्हू काका की चार बकरी थीं ! सब पानी........

राय साहब—सरकारी मदद मिली ?

चेतराम—बातचीत तो चल रही है....पर अब तो हम लोग पहाड़ी की तलहटी में चले गये हैं। नयी टोली बस रही है।

राय साहब—ओ हो, बड़े ज़ोम हैं। लेकिन वहाँ तो ऊसर ज़मीन है। खेती की गुंजायश कहाँ?

चेतराम—मुसकिल तो हुई है सरकार। पर बारी-बारी से दस-दस जन मिलकर तैयार करते हैं। एक बाँध वन जाय तो बेड़ा पार है सरकार।

राय साहब—हिम्मत तो बहुत की तुम लोगों ने।

हेमलता—लेकिन है मुसीबत ही। रोज़ का खाना-पीना कैसे चलता होगा इन लोगों का?

राय साहब—यही, नौकरी मजूरी। जब मिल जाय।

चेतराम—वह तो हई सरकार! पर अब तो बाँस का काम करने लगे हैं। हाट-बाज़ार में बिक जाता है। इनसे भी बढ़िया मूढ़े बनाने लगे हैं।

राय साहब—अच्छा? लाना भई हमारे लिए भी एक सेट।

चेतराम—ज़रूर सरकार! दादा तो इसीमें लगे रहते हैं रात दिन। मैंने भी टोकरी बनाना सीख लिया है, रंग-बिरंगी। लोचन भैया को बहुत पसंद हैं। कहते हैं सहर में तो बहुत बिकेंगी....

हेमलता—तो तुम्हारे भाई भी हैं?

चेतराम—(हँसता है।) न बीबी जी! लोचन भैया? लोचन भैया तो....सब के भैया हैं! कहते हैं........

राय साहब—जगत भैया!

आया—(नेपथ्य में) चेतू, ओ चेतू!

चेतराम—चाय ले जाऊँ सरकार?

राय साहब—हाँ! और तो नहीं लोगी हेम?

हेमलता—उं....हाँ....हँ....नहीं। ले जाओ।

(चेतू ले जाता है। राय साहब ड्रेसिंग गाउन की जेब में हाथ डालकर घूमने लगते हैं।)

राय साहब—तो यह है इन लोगों की ज़िन्दगी। गरीब भी और गन्दे भी। उन दिनों तो उस टोली में बिना नाक बंद किये जाना हो ही नहीं सकता था। बाप इसका मेहनती था। असल में काम करने में पक्के हैं ये लोग, लेकिन हैं जाहिल!

हेमलता—पापा, आपको याद है हमारे आर्ट मास्टर ने वह तस्वीर बनायी थी 'किसान की साँझ'—कंधे पर हल, आगे बैल, थका-माँदा किसान, साँझ की चित्ताकर्षक रंगीनी में भी निर्लिप्त....

राय साहब—पाँच सौ रुपये दाम रखा था न उन्होंने उसका?

हेमलता—पापा, आपने ग़ौर किया इस चेतराम की शक्ल उससे मिलती है....मास्टर साहब कहते थे देहाती ज़िन्दगी और दृश्यों में अनगिनती मास्टर-पीसेज़ के बीज बिखरे पड़े हैं। एक-एक चेहरे में सदियों का अवसाद है। एक-एक झाँकी में युगों की गहराई। अमृता शेरगिल........

राय साहब—अमृता शेरगिल....भई, उसकी तस्वीरों पर तो मातम-सा छाया रहता है।

हेमलता—वह तो अपना-अपना ऐटीट्यूड है। अपनी भंगिमा! लेकिन पापा, यह तो मानिएगा कि शेरगिल के रंगों में भारत के गाँव की मिट्टी झलक रही है। पापा मुझे लगता है जैसे मेरी कूची, मेरे ब्रुश को यहाँ आकर नयी दृष्टि मिली हो। कितने चित्र मैं यहाँ खींच सकती हूँ? पकते हुए गेहूँ के खेत में चकित-सी किसान-बाला। रंग-बिरंगी बाँस की टोकरियाँ बनाता हुआ इसी चेतराम का बाप! सवेरे की किरण में घुली-घुली-सी गाय को दुहता हुआ ग्वाला........

राय साहब—और यह चाँदनी! (हँसता है।) मगर हेम, वह चित्र भी तैयार हुआ या नहीं?

हेमलता—कौन-सा?

राय साहब—अरे वही....खास चित्र!

हेमलता—पापा आप तो (शर्मीली-सी) लेकिन बीरेन ने पंद्रह मिनट भी तो लगातार सिटिंग नहीं दी। इधर-से-उधर फुदकते फिरते थे।

राय साहब—इस वक़्त भी जान पड़ता है कहीं फुदक ही रहे हैं, हज़रत।

हेमलता—आपने भी फिजूल भेजा ताँगा। जिसके पैर में ही सनीचर हो....

(बीरेन पीछे से हठात् निकलता है।)

बीरेन—सनीचर नहीं आज तो शुक्र है। कहीं इसी वजह से तुम ताँगा भेजना नहीं भूल गयीं।

हेमलता—बीरेन!

राय साहब—बीरेन? अरे! क्या तुम्हें ताँगा नहीं मिला स्टेशन पर?

बीरेन—नमस्ते पापा जी? जी, मुझे ताँगा नहीं मिला, शायद........

राय साहब—अजब अहमक है यह साईन। रास्ता तो एक ही है।

बीरेन—लेकिन कोई बात नहीं। मेरा भी काम बन गया।

राय साहब—सामान कहाँ है?

हेमलता—चेतू! (पुकारते हुए) आया, चेतू को भेजना! सामान....

बीरेन—सामान तो चौधरी जंगबहादुर की देख-रेख में स्टेशन ही छोड़ आया हूँ।

राय साहब—यानी मिल गये तुम्हें भी चौधरी जंगबहादुर।

हेमलता—वही न पापा, जो हर गाड़ी पर किसी-न-किसी आनेवाले को लेने के लिए जाते हैं?

बीरेन—या किसी-न-किसी जानेवाले को पहुँचाने। मगर यह भी निराला शौक है कि बिलानाग़ा हर गाड़ी पर स्टेशन जा पहुँचना।

राय साहब—दो ही तो गाड़ी आती हैं इस छोटे स्टेशन पर, लेकिन चौधरी की वजह से उस सूने स्टेशन पर रौनक हो जाती है।

बीरेन—जी हाँ, जब तक उनसे मुलाकात नहीं हुई तब तो मुझे भी लगा कि पैसफ़िक सागर के टापू पर बहक गया हूँ।

हेमलता—यहाँ चौरंगी की चहल पहल की उम्मीद करना तो बेकार था बीरेन।

बीरेन—(ठहाका) याद है न बेकन की वह उक्ति, "भीड़ के बीच में भी चेहरे गूँगी तसवीरें जान पड़ते हैं और बातचीत घंटियाँ, अगर कोई जाना पहचाना न हो।" लेकिन तुमने यह कैसे समझ लिया कि मुझे वीराना पसन्द नहीं।........मैं तो चौधरी साहब से भी पल्ला छुड़ाकर भागा।

राय साहब—तो शायद उन्होंने तुम्हें समूची दास्तान सुनानी शुरू कर दी होगी।

बीरेन—जी हाँ, यह बताया कि वे साल भर में एक बार, सिर्फ़ एक बार, कलकत्ते की रेस में बाज़ी लगाने जाते हैं। यह भी बताया कि गवर्नर साहब के जिस डिनर में उन्हें बुलाया था, उसका निमंत्रण-पत्र अब भी उनके पास है और यह कि गाँव में अब तक जितनी बार कलक्टर आये हैं, उनके दिन और तारीखें उन्हें पूरी तरह याद हैं।

हेमलता—ग़ज़ब है!

राय साहब—हाँ भाई याददाश्त चौधरी की लाजवाब है।

बीरेन—याददाश्त की दुनिया में ही रहते जान पड़ते हैं! इसलिए जब उन्होंने स्टेशन पर सामान की देखभाल का ज़िम्मा लिया तो मैंने भी छुटकारे की साँस ली और रास्ता छोड़कर खेतों की राह बस्ती की ओर चल दिया।

(आया का प्रवेश)

आया—बीरेन बाबू, पहले गर्म चाय पीजिएगा या फिर खाने का ही इन्तज़ाम....

बीरेन—ओ! हलो आया कैसी हो?

आया—मैं तो मज़े ही में हूँ। लेकिन आपके आने से हमारी हेम बीबी के लिए चहल-पहल हो गयी वरना........

हेमलता—वरना क्या? मुझे तो कलकत्ते की चहल-पहल से यहाँ का सूना संगीत ही भाता है।

राय साहब—आया, हेम की उलटबाँसियाँ तुम न समझोगी।

बीरेन—लेकिन, आया, अब मैं इस जंगल में मंगल करनेवाला हूँ।

आया—भगवान वह दिन भी जल्दी दिखायें मैं तो हेम बिटिया........

हेमलता—चुप भी रहो, आया!

राय साहब—(ठहाका) हा, हा, हा!

बीरेन—मैं दूसरी बात कह रहा था। मेरा मतलब है इस गाँव की काया-पलट करना। यह गाँव मेरा इन्तज़ार कर रहा है, जैसे....जैसे...

हेमलता—जैसे वीणा के तार उस्ताद की उँगलियों का (किंचित हास) खूब!

राय साहब—(हँसते हुए) हा, हा, हा! बीरेन, है न मेरी बिटिया लाजवाब?

बीरेन—लेकिन वीणा के सुर में वह मस्ती कहाँ जो एक नयी दुनिया के निर्माण में है।

हेमलता—(व्यंग्य) कोलम्बस!

राय सहाब—नयी दुनिया का निर्माण। यह तो दिलचस्प बात जान पड़ती है बीरेन! सुनें तो....

बीरेन—जिस रास्ते से—शार्टकट से—मैं आया उससे लगी हुई जो ज़मीन है, थोड़ी ऊँची और समतल, उसे देखकर मेरी तबीयत फड़क गयी और मैंने तय कर लिया कि....

आया—बीरेन बाबू!

बीरेन—(अपनी बात जारी रखते) कि बिलकुल आइडियल रहेगी वह जगह! बिलकुल मानो उसी के लिए तैयार खड़ी हो....

राय साहब—किसके लिए?

आया—सरकार बीरेन बाबू की बातें तो सावन की झरी हैं, पर मुझे तो बहुतेरा काम पड़ा है।

हेमलता—(चंचल) इन्हें खाना मत देना आया!

बीरेन—(उसी धुन में) मैं कहता हूँ पापा जी उससे बेहतर जगह....

राय साहब—ना, भई, बीरेन! पहले आया का हुक्म मान लो। हेम कमरा इन्हें दिखा दो। गर्म पानी का इन्तज़ाम तो होगा ही। जब तैयार हो जायें और खाना भी, तो आया, मुझे ख़बर दे देना।

आया—लेकिन इस मौसम में बाहर न रहिएगा देर तक तो....

राय साहब—बस अभी आया। चौधरी साहब इस बीच में आयें तो दो बात उनसे भी कर लूँगा।

बीरेन—(जाते-जाते) लेकिन, पापा जी, आप ग़ौर करके देखिए, ग्रामोद्धार-समिति के लिए पहाड़ की तलहटीवाली ज़मीन से मौज़ूँ और कोई जगह हो नहीं सकती! मैंने उन लोगों से....

(जाता है।)

राय साहब—ग्रामोद्धार-समिति! ख़याल तो अच्छा है। एक ज़माने में मैंने भी....(सामने देखकर) कौन? चेतू! अरे तू यहाँ कैसे खड़ा है?

चेतू—सरकार....

(रुक जाता है।)

राय साहब—क्या गर्म पानी तैयार नहीं?

चेतू—कर आया सरकार! कमरा भी सफ़ा है।

राय साहब—ठीक।

चेतू—सरकार!

(झिझककर रुक जाता है।)

राय साहब—क्या बात है चेतू?

चेतू—सरकार वह तलहटीवाली ज़मीन!

राय साहब—कौन ज़मीन?

चेतू—जी नये साहब जिसे लेने की सोच रहे हैं।

राय साहब—अरे बीरेन! अच्छा वह ज़मीन, जहाँ वह ग्रामोद्धार समिति बैठायेंगे।

चेतू—लेकिन सरकार उसपर तो हम लोग अपना नया बसेरा कर रहे हैं। आठ दस बाँस की कोठियाँ—झुरमुट—लग जायें तो बेड़ा पार हो जाय।

राय साहब—अरे तुम मुसहरों का क्या! जहाँ बैठ जाओगे, बसेरा हो जायेगा, लेकिन गाँव में जो उद्धार के लिए काम होगा—(घोड़े के टापों और ताँगे की आवाज़) यह क्या? ताँगा आ गया क्या? देख भई, बीरेन बाबू का सामान उतार ला।

(चेतू बाहर जाता है। ताँगा रुकनें की आवाज़) चौधरी साहब हैं क्या ?

बालेश्वर—(बाहर ही से बोलता हुआ आता है) जी, चौधरी साहब ने ही मुझे भेजा है सामान के साथ। मेरा नाम बालेश्वर है, बी. पी. सिन्हा। और ये हैं करम चंद बरैठा। (करम चंद नमस्ते करता है।) बच्चू बाबू के चचेरे भाई हैं। मैं चौधरी साहब का भतीजा हूँ।

राय साहब—कहाँ रह गये चौधरी साहब ?

बालेश्वर—जी ताँगे में आने की वजह से उनके घूमने का कोटा पूरा नहीं हुआ तो फिर से घूमने गये हैं।

राय साहब—(हँसते हुए) खूब !

करम चन्द—हम लोगों ने सोचा कि आपका सामान भी पहुँचा दें और आपके दर्शन भी हो जायें।

बालेश्वर—बात यह है कि देहात में कोई 'लाइफ़' नहीं।

करम चन्द—जब से शहर से लौटे हैं, जान पड़ता है कि बन्दी बन गये हैं। 'ट्रान्सपोर्टेशन फ़ार लाइफ़ !'

राय साहब—क्या करते थे शहर में ?

बालेश्वर—करम चंद तो इंटरमीडियेट तक पढ़कर लौट आये और मैं........

करम चन्द—बात यह है कि इम्तहान के परचे ही बेढंगे बनाये थे किसी ने।

बालेश्वर—मैं तो बी. ए. कर रहा था और एक दफ़्तर में किरानी की नौकरी के लिए भी दरख्वास्त दे दी थी, मगर सिफ़ारिश की कमी की वजह से........

राय साहब—किरानी? तुम्हारे यहाँ तो कई बीघे खेती होती है।

बालेश्वर—पढ़ाई-लिखाई के बाद भी खेती! पढ़े फ़ारसी बेचे तेल!

करम चन्द—और फिर शहर की लाइफ़ की बात ही और है। खाने के लिए होटल, सैर के लिए मोटर, तमाशे के लिए सिनेमा।

राय साहब—रहते कहाँ थे?

बालेश्वर—शहर में रहने का क्या? चार अंगुल का कोना भी काफ़ी है।

करम चन्द—शहर की सड़कें यहाँ के बैठक-खाने से कम नहीं। वह चहल-पहल, वह रंगीनियाँ!

राय साहब—भई, यह तो तुम लोग ग़लत कहते हो। मैंने अपने बचपन और जवानी के अनेक सुहाने बरस यहाँ गुज़ारे हैं।

बालेश्वर—तब बात और रही होगी, जज साहब!

करम चन्द—और फिर छोटी उम्र में शहर की मनमोहक ज़िन्दगी से गाँव का मिलान करने का मौका कहाँ मिलता होगा।

राय साहब—मनमोहक....खैर। आजकल क्या शग़ल रहता है ?

करम चन्द—गले पड़ी ढोलकी बजावे सिद्ध ! सोचा कुछ पढ़े-लिखे, जानकार लोगों का क्लब ही बना लें।

बालेश्वर—वह भी तो नहीं करने देते लोग।

राय साहब—कौन लोग ?

करम चन्द—इस गाँव की पालिटिक्स आपको नहीं मालूम ?

राय साहब—यहाँ भी पालिटिक्स है ?

बालेश्वर—ज़बरदस्त ! बात यह है कि मैं और करमचन्द तो ढंग से क्लब चलाना चाहते हैं। प्रेज़ीडेंट, दो वाइस प्रेज़ीडेंट, एक सेक्रेटरी, दो ज्वाइंट सेक्रेटरी, पाँच कमेटी मेम्बर।

करमचन्द—जी हाँ, यह देखिए ! (एक काग़ज़ निकालकर राय साहब को दिखाता है।) इस तरह लेटर-पेपर छपवाने का इरादा है। ऊपर क्लब का नाम रहेगा और....यहाँ हाशिए में सब पदाधिकारियों के नाम और........

बालेश्वर—लेकिन ठाकुरों की बस्ती में दो आदमी हैं' धरम सिंह और किशनकुमार सिंह। कहते हैं, दोनों वाइस प्रेज़ीडेंट उन्हीं के रहें और कमेटी में भी तीन आदमी। मैंने कहा कि एक ज्वाइंट सेक्रेटरी ले लो और दो कमेटी के मेम्बर।

राय साहब—वे भी तो पढ़े-लिखे होंगे।

करम चन्द—जी हाँ, कालेज तक।

राय साहब—तब ?

करम चन्द—अपने को लाट साहब समझते हैं। कहते हैं, क्लब होगा तो उन्हीं के मोहल्ले में।

बालेश्वर—भला आप ही सोचिए, हम लोगों के रहते हुए ठाकुरों की बस्ती में क्लब कैसे खुल सकता है?

करम चन्द—आप ही इंसाफ़ कीजिए, जज साहब।

राय साहब—भई, इसके लिए तुम बीरेन से बात करो। यह लो बीरेन आ गये।

बीरेन—(हेम के साथ आते हुए) पापा जी ग्रामोद्धार-समितिवाली वह बात मैंने पूरी नहीं की।

राय साहब—बीरेन वह बात तुम इन लोगों को समझाओ। यह हैं बालेश्वर उर्फ़ बी. पी. सिन्हा और ये हैं करम चन्द बरैठा। गाँव के पढ़े-लिखे नौजवान! क्लब खोलना चाहते हैं। मैं तो चलता हूँ, देरी हो रही है। हेम बेटी, बीरेन को देर मत करने देना।

(चले जाते हैं।)

बीरेन—अच्छा तो गाँव में क्लब स्थापित करना चाहते हैं आप?

बालेश्वर—जी हाँ। यह देखिए यह है हम लोगों का लेटर-पेपर और नियमावली का मसौदा। बात यह है कि........

बीरेन—आइए मेरे कमरे में चलिए, वहाँ इत्मीनान से बातें होंगी। इधर से चलिए। मैं अभी आया।

(बालेश्वर और करम चन्द जाते हैं।)

हेमलता—मैं यहीं हूँ। जल्दी करना नहीं तो जानते हो आया वह ख़बर लेगी कि........

बीरेन—तुम भी चलो न! क्या उमदा मेरी योजना है। सुनकर फड़क जाओगी।

हेमलता—कमरे में चलूँ? उँह....देखते हो यह चाँदनी (बाहर दूर से सम्मिलित स्वर में गाने की आवाज़) और सुनते हो यह स्वर, मानो चाँदनी बोलती हो!

वीरेन—(जाते-जाते शरारत भरे स्वर में) मैं तो देखता हूँ बस किसीका चाँद-सा मुखड़ा और सुनता हूँ तो अपने दिल की धड़कन (हाथ हिलाते हुए) टा...टा!

हेमलता—(मीठी मुस्कान) झूठे।

(सम्मिलित संगीत-स्वर निकट आ रहा है, स्त्री-पुरुष दोनों का स्वर)

चननिया छटकी मो का करो राम।

गंगा मोर मइया जमुना मोर बहिनी

चाँद सूरज दूनो भइया

मो का करो राम। चननिया छटकी........

सोसु मोर रानी, ससुर मोर राजा

देवरा हवें सहजादा मो का करो काम

चननिया छटकी मो का करो राम!

(गाने के बीच में चेतू का जल्दी से आना और बाहर की तरफ़ चलना)

हेमलता—कौन चेतू ? कहाँ जा रहे हो ?

चेतू—जी....वह....वह गाना

हेमलता—बड़ा सुन्दर है ।

चेतू—मेरी ही बस्ती की टोली है । हर पूनो की रात को गाँव के डगरे डगरे घूमती है ।

हेमलता—इधर ही आ रही है ।

चेतू—सामनेवाले डगरे में । वह देखिए । और देखिए उसमें वह लोचन भैया भी हैं ।........

हेमलता—कहाँ ?

चेतू—वह मिर्ज़ई पहने । मैं चलता हूँ बीबी जी । वे लोग मुझे बुला रहे हैं....

(जाता है । गाने का स्वर निकट आकर दूर जाता है ।)

"मो का करो राम....मो का करो राम ! "

हेमलता—(अब स्वर मंद हो गया है ।) "चननिया छटकी मो का करो राम ! " ओह, कैसा मनोहर पीर है यह !

आया—हेम बीबी, हेम बीबी । इस ठंड में कब तक बाहर रहेगी ?

हेमलता—(उच्च स्वर) अभी आयी आया । फिर मंद स्वर में) चाँदनी और मैं ! मैं और बीरेन ! लेकिन यह गाना और वह....वह...लोचन !

(विचार-मग्न अवस्था में प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[स्थान वही। पन्द्रह रोज़ बाद। समय सबेरे। बाहर से राय साहब और एक व्यक्ति की बातचीत का अस्पष्ट स्वर और फिर थोड़ी देर में ठहाका मार-मारकर हँसते हुए राय साहब का प्रवेश।]

राय साहब—हा, हा, हा! वाह भाई वाह! सुना बेटी हेम! हेम!

हेमलता—(नेपथ्य में) आयी पापा!

राय साहब—हा, हा, हा!

(हेम का प्रवेश, हाथ में एक बड़ा-सा चित्र और ब्रश।)

हेमलता—क्या बात हुई पापा?

राय साहब—हेम हमारे चौधरी साहब भी लाजवाब हैं! अभी तो मुझे फाटक पर छोड़कर गये हैं। सबेरे की चहलकदमी में इनका साथ न हो तो मैं तो इस देहात में गूँगा भी हो जाऊँ और बहरा भी!

हेमलता—आप तो आज उनके घर तक जानेवाले थे।

राय साहब—गया तो था, यही सोचकर कि थोड़ी देर के लिए उनकी बैठक में भी चलूँ, लेकिन बाहर से ही बोले, "वहीं ठहरिए!

हेमलता—अरे!

राय साहब—कहने लगे, "पहले मैं ऊपर पहुँच जाऊँ, तब आप कार्ड भेजिएगा और तब बैठक में जाना मुनासिब होगा! क़ायदा जो है।

हेमलता—(हँसती है।) ऐसी भी क्या अंग्रेज़ियत ?

राय साहब—और भी तो सुनो। घर में उनका जो प्राइवेट कमरा है, उसमें बाहर एक घंटी लगी है। जिसे भी अन्दर जाना हो, घंटी बजानी होती है। बिना घंटी बजाये अगर कोई अन्दर आ गया तो चौधरी साहब उससे बात नहीं करते, चाहे उनकी बीबी हो।

हेमलता—मालूम होता है मनुस्मृति की तरह एटीकेट संहिता चौधरी साहब छोड़कर जायेंगे।

राय साहब—लेकिन आदमी दिल का साफ़ और बिलकुल खरा है, हीरे मानिन्द! दूसरे के एक पैसे पर हाथ नहीं लगाता।

हेमलता—तभी शायद बीरेन ने उन्हें ग्रामोद्धार-समिति का ऑडीटर बनाया है।

राय साहब—बीरेन से कह देना कि चौधरी साहब हिसाब में बहुत कड़े हैं। कह रहे थे कि चूंकि इस संस्था में उनका भतीजा बालेश्वर शामिल है, इसलिए इसकी तो एक-एक पाई पर निगाह रखेंगे!

हेमलता—बालेश्वर मुझे पसन्द नहीं। झगड़ालू आदमी है।

राय साहब—झगड़ा तो गाँव की नस-नस में बसा है।

हेमलता—पहले भी ऐसा था पापा?

राय साहब—था, लेकिन ऐसी हठ-धर्मी नहीं थी। मैं यह नहीं कहता कि पहले, शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे लेकिन... लेकिन...पहले, पढ़े-लिखे नौजवान गाँव में कम थे और......

हेमलता—पढ़े-लिखे नहीं, अधकचरे। टैगोर ने लिखा है न 'हाफ़ बेक्ड कल्चर।' लेकिन पापा क्या सच बीरेन का तूफ़ानी जोश और उसकी पैनी सूझ गाँव में काया-पलट कर देगी ?

राय साहब—तुम क्या समझती हो ?

हेमलता—कह रहे थे न बीरेन उस रोज़ कि गाँव में क्रांति के लिए एक नये दृष्टि-कोण की ज़रूरत है, एक नये मानसिक धरातल की........

राय साहब—बीरेन बोलता खूब है! उसीका जादू है।

हेमलता—सैकड़ों की जनता झूम जाती है।

राय साहब—उस दूसरी पार्टी का क्या हुआ। ग्राम-सुधार-समिति में शामिल हुई या नहीं ?

हेमलता—अभी तो नहीं। कल रात बहुत-सा वाद-विवाद चलता रहा। बीरेन देर से लौटे थे। पता नहीं क्या हुआ ?

राय साहब—लेकिन आज तो नींव पड़ेगी समिति की।

हेमलता—हाँ, आप नहीं जाइएगा उत्सव में पापा ?

राय साहब—न बेटी, मैंने तो बीरेन से पहले ही कह दिया था कि मैं नहीं जा सकूँगा मुझे........

(एक हाथ में काग़ज़ लिए, दूसरे से कुरते के बटन लगाते हुए बीरेन का प्रवेश।)

बीरेन—लेकिन पापा जी, चौधरी साहब तो आ रहे हैं।

राय साहब—उन्हें ठीक स्थान पर बैठाना, नियम के साथ।

बीरेन—(हँसते हुए) उनकी पूरी देख-भाल होगी। पापा जी, अगर आप वहाँ पहुँच नहीं रहे हैं तो यह तो देखिए मेरे भाषण का ड्राफ़्ट।

राय साहब—(उसके हाथ से काग़ज़ लेते हुए) तुम तो बिना तैयारी के ही बोलते हो।

(काग़ज़ पढ़ने लगते हैं।)

बीरेन—जी हाँ, लेकिन आज तो ग्राम-सुधार-समिति की समूची योजना को गाँव के सामने रखना है....पढ़िए न!

राय साहब—(पढ़ते हुए) बड़ी ज़ोरदार स्कीम है!

बीरेन—जी आगे और देखिए (हेम से) और हेम? सामिति के भवन में जो चित्र टँगेंगे तुमने पूरे कर लिये?

हेमलता—एक तो तैयार ही सा है।

(चित्र की ओर संकेत करती है।)

बीरेन—यह?....बड़े चटकीले रंग हैं, बड़ा मनोहर नाच का दृश्य है....खूब! लेकिन....ये....इस कोने के अँधेरे में ये कौन लोग हैं?....

हेमलता—तुम क्या समझते हो?

बीरेन—(रुककर सोचता-सा) जैसे निर्वासित भटके हुए प्राणी!

राय साहब—(पढ़ते-पढ़ते) बीरेन तुम्हारी ग्राम-सुधार-समिति में दिमाग़ी कसरत तो बहुत है—पुस्तकालय, भाषण, अध्ययन मंडल........

बीरेन—(चित्र को अलग रखता हुआ) वही तो पापा जी! ग्राम-जागृति के मानी क्या हैं? अपनी ज़रूरतों और समस्याओं पर विचार करने की क्षमता! देहात की मूक-व्यथा को वाणी की आवश्यकता है। माँग है, चुने हुए ऐसे नौजवानों की जो धरती की घुटनों को गगन के गर्जन का रूप दे सकें, जो रूढ़ियों के ख़िलाफ आवाज़ उठा सकें, जो आर्थिक प्रश्नों से माथा-पच्ची कर सकें। मैं समिति के पुस्तकालय में मार्क्स, लेनिन से लेकर स्पेंग्लर, रसेल इत्यादि सभी ग्रंथों का अध्ययन कराऊँगा। एक नयी रोशनी, एक नया मानसिक मन्थन—इटलेक्चुअल फ़रमेंट....

राय साहब—ठीक बीरेन ठीक! बातें तो बहुत होंगी, लेकिन भई, देहात की ग़रीबी और गन्दगी को देखकर तो मन उचाट होता है।

बीरेन—(जोश के साथ) यह आपने ठीक सवाल उठाया। ग़रीबी और गन्दगी! पापा जी, इस ग़रीबी और गन्दगी को देखकर मेरा मन क्रोधाग्नि से जल जाता है। वे बेघरबार के बूढ़े-बच्चे, वह भूखे-भिखमंगों की टोली, वे चीथड़ों में सिकुड़ी औरतें—इन सब के ध्यान-मात्र से दया का सागर उमड़ उठता है। लेकिन दया के सागर में क्रोध के तूफ़ान की ज़रूरत है पापा जी! तूफ़ान जो न थमना जाने, न चुप रहना। और इस तूफ़ान को क़ायम रखने के लिए चाहिए कुछ ऐसी हस्तियाँ जो उस क्रोध

और दया के क़ाबू में न आकर भी उसीके राग छेड़ सकें, वकील की तरह पूरे जोश के साथ जिरह कर सकें, लेकिन मुवक्किल से अलग भी रह सकें।

हेमलता—सरोवर में कमल, लेकिन जल से अछूता!

बीरेन—हाँ, उसीकी ज़रूरत है। जो लोग इस गरीबी और गन्दगी की दलदल से दूर रहकर उसमें फँसी दुनिया के बेबस अरमानों को समाज के सामने मुस्तैदी के साथ चुनौती का रूप दे सकें। (रुककर भाषण के स्तर से उतरता हुआ) लेकिन मुझे तो चलना है पापा जी। पहले से जाकर समिति की कुछ उलझनें सुलझानी हैं, जिससे उत्सव के वक़्त फ़साद न हो।.... तुम तो थोड़ी देर में आओगी हेम? तब तक इस चित्र को ठीक-ठाक कर लो। अच्छा तो मैं चला।

(चला जाता है। कुछ देर चुप्पी रहती है।)

राय साहब—यही तो जादू है बीरेन का।

हेमलता—जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले।

राय साहब—कभी-कभी मुझे तो देहात में उलझन-सी लगती है। बरसों बाद आया हूँ....जैसे चश्मा शहर ही छोड़ आया हूँ। और बीरेन है कि आते ही गाँव को अपना लिया।

हेमलता—मालूम नहीं पापा जी, उन्होंने गाँव को अपना लिया या....

(चेतू का प्रवेश)

चेतू—सरकार का नाश्ता तैयार है।

राय साहब—(आते हुए) अच्छा चेतू ! आता हूँ (चलते-चलते चित्र पर निगाह जाती है।, हेम ! यह तस्वीर अच्छी बनी है।

हेमलता—थोड़ा टच करना बाकी है।

राय साहब—नाचनेवालों की टोली में बड़ी लाइफ़ है। रंग की भी, गति की भी ! लेकिन....कोने में यह लोग कैसे खड़े हैं ?

हेमलता—आप क्या समझते हैं ?

राय साहब—(सोचते-से सप्रयास) जैसे....जैसे सूखे और सूने दरख्त जिन्हें धरती से खुराक ही नहीं मिलती।

हेमलता—पापा, आप भी तो कवि हैं।

राय साहब—(हँसते हैं।) तुम्हारा बाप भी जो हूँ।.... अच्छा मैं तो चला।

(चले जाते हैं।)

हेमलता—(विचार मग्न) सूखे और सूने दरख्त।....या निर्वासित और भटके प्राणी !....नहीं....नहीं कुछ और (चेतू से) चेतू ज़रा लाना वह स्टूल, यहीं बैठकर ज़रा इसे ठीक करूँ।

चेतू—(स्टूल रखता हुआ) यह लीजिए। रंग भी यहीं रख दूँ ?

हेमलता—लाओ, मुझे दो। अब तो तुम्हें तसवीर खींचने की झक की आदत हो गयी है।

(रंग तैयार करने लगती है।)

चेतू—जी, बीबी जी ।

हेमलता—देखो, थोड़ी देर में यह तसवीर लेकर तुम्हें मेरे साथ चलना है ।

चेतू—कहाँ ?

हेमलता—बीरेन बाबू की समिति का जलसा कहाँ हो रहा है, वहीं पहाड़ी की तलहटी पर ।

चेतू—(झिझकता हुआ) बीबी जी, वहाँ मैं नहीं जाऊँगा ।

हेमलता—क्यों ?

चेतू—बीबी जी, वहाँ हम ग़रीब मुसहर अपना बसेरा करनेवाले थे । हम बाँस की पौध लगा रहे थे । मेहनत करके टोकरी बनाते, घर तैयार करते । बाँध होता तो खेत भी........

हेमलता—(चित्र बनाते बनाते) लेकिन ग्रामोद्धार-समिति से भी तो आख़िर तुम लोगों की तकलीफें दूर होंगी ।

चेतू—पता नहीं बीबी जी । समिति में बहुत देर तक बहसें तो होती हैं । पर........

हेमलता—और फिर बीरेन बाबू के दिल में तुम लोगों के लिए कितना ख़याल है, कितनी दया है ।

चेतू—(किसी अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत हो) हमें दया नहीं चाहिए ।

हेमलता—(चौंककर उसकी ओर मुड़ती है।) दया नहीं चाहिए? चेतू! यह तुमसे किसने कहा?

चेतू—(कुछ सकपकाकर) बीबी जी लोचन भैया कहते हैं कि........

(सड़क पर से सम्मिलित स्वर में नारों की आवाज़)

ग्रामोद्धार-समिति ज़िन्दाबाद!

बी० पी० सिन्हा ज़िन्दाबाद!

ग़द्दारों का नाश हो!

ग्रामोद्धार-समिति ज़िन्दाबाद!

(आवाज़ दूर हो जाती है।)

हेमलता—चेतू यह सब क्या है?

(खड़ी होकर देखने लगती है।)

चेतू—उत्सव में ही जा रहे हैं। बालेश्वर बाबू की पार्टी के लोग हैं। करम चंद बाबू इनसे अलग हो गये हैं और ठाकुर पार्टी के लोगों में जा मिले हैं।

हेमलता—कल रात झगड़ा तय नहीं हुआ?

चेतू—पता नहीं...यह देखिए दूसरी पार्टी के लोग भी जा रहे हैं। कहीं झगड़ा न हो जाय।

(सड़क पर से दूसरे दल के नारों का शोर सुनाई देता है।)

करम चंद की जय हो !

करम चद की जय हो ।

ग्रामोद्धार-समिति हमारी है ।

ग्राम-जागृति जिन्दाबाद !

स्वार्थी सिन्हा मुर्दाबाद ।

(आवाज़ दूर हो जाती है ।)

हेमलता—(चिंतित स्वर में) चेतू, ये लोग तो लाठी लिये हुए हैं ।

चेतू—जी हाँ, पहली पार्टी भी लैस थी ।

(नेपथ्य में पुकारते हुए आया का प्रवेश)

आया—चेतू, ओ चेतुआ ! देख तो यह क्या फ़साद है ?

चेतू—बालेश्वर बाबू और करम चन्द की पार्टियाँ हैं । दोनों बीरेन बाबू के उत्सव में गयी हैं ।

हेमलता—लाठी डंडा लिए हुए, आया !

आया—और तू यहीं खड़ा है चेतुआ । अरे जल्दी जा, दौड़कर चौकीदार से कह कि थाने में ख़बर कर दें । क्या मालूम क्या झगड़ा हो जाये । जल्दी जा । लाठी चल गयी तो बीरेन बाबू घिर जायँगे । जल्दी दौड़ जा ।

(चेतू तेज़ी से जाता है ।)

हेमलता—मैं भी जाऊँगा, आया । बीरेन अकेले हैं ।

आया—न बीबी जी, तुम्हें न जाने दूँगी। (जाते हुए चेतू को पुकारते हुए) चेतू, लौटते वक़्त जलसे में झाँकता आइयो (हेम से, हेम बीबी, कहाँ की इल्लत मोल ले ली बीरेन बाबू ने!

हेमलता—उनकी बात तो सब लोग सुनेंगे।

आया—बीबी जी, तुमने अभी तक नहीं समझा गाँव-गँवई के मामलों को। यहाँ भलेमानसों का बस नहीं है। अपना तो वही कलकत्ता अच्छा था।

हेमलता—(झिड़कते स्वर में) आया तुम तो बस...

आया—मैं ठीक कह रही हूँ बीबी जी। अभी तुम लोगों को पन्द्रह दिन हुए हैं यहाँ आये। देख लो, बड़े सरकार की तबीयत ऊबी-सी रहती है। चौधरी न हों तो एक दिन काटना मुश्किल हो जाय। और तुम हो........

हेमलता—मुझे तो अच्छा लगता है। कई स्केच बना चुकी हूँ।

आया—अरे, तसवीरें तो तुम कलकत्ते में भी बना लोगी। अनगिनती और इनसे अच्छी।

हेमलता—तुम तो, आया, उलटी बातें करती हो। आख़िर हम लोग गाँव की ही औलाद हैं। यह धरती हमारी माँ है। अब हम लोग फिर यहाँ आकर रहना चाहते हैं। इसकी गोदी में आना चाहते हैं।

आया—अब बीबी जी इतनी हुसियार तो मैं हूँ नहीं जो तुम्हें समझा सकूँ। पर इतना कहे देती हूँ कि उखाड़े हुए

पौधे की जड़ में हवा लग जाय तो फिर दुबारा ज़मीन में गाड़ना बेकार है। उसके फूल तो बंगले के गुलदस्तों की ही शोभा बढ़ायेंगे।

हेमलता—(अचंभित आया को देखती रह जाती है।) आया तुम्हारी बात...तुम्हारी बात खौफ़नाक है!

(नेपथ्य से आवाज़ें "इधर...इधर...ले आओ, सम्हलकर...चेतू तुम हाथ पकड़ लो...इधर...इधर")

आया—हैं! यह कौन आ रहा है? (बाहर की ओर देखते हुए) अरे यह तो बीरेन बाबू को पकड़े दो आदमी चले आ रहे हैं। घायल हो गये क्या? बाप रे!....

(दौड़कर बाहर की तरफ़ जाती है।)

हेमलता—(घबड़ाकर) बीरेन, बीरेन! (बंगले की तरफ़ पुकारते हुए)....पापा जी, पापा जी इधर आइए!

राय साहब—(नेपथ्य में) क्या हुआ?

हेमलता—बीरेन घायल हो गये। ओह....

(बेहोश बीरेन को लाठियों के स्ट्रेचर पर सम्हाले हुए, चेतू और एक व्यक्ति, जिसकी अपनी बाँह पर घाव है, प्रवेश करते हैं। वह इस परिस्थिति में भी स्थिरचित्त जान पड़ता है। उसकी वेष-भूषा चेतू की-सी है।)

आया—(घबड़ाई हुई) चेतू, ये तो बेहोश हैं। हाय... राम!

(स्ट्रेचर ज़मीन पर रख दी जाती है।)

व्यक्ति—घबड़ाइए नहीं।

हेमलता—(स्ट्रेचर के पास घुटने टेकती हुई) बीरेन! बीरेन!

(राय साहब घबड़ाये हुए प्रवेश करते हैं।)

राय साहब—क्या हुआ? हैं! यह तो बेहोश हैं।....चेतू क्या हुआ?

चेतू—सरकार दोनों पार्टी के लठैत भिड़ गये। बीच में आ गये बीरेन बाबू। वह तो लोचन भैया ने जान पर खेलकर बचा लिया वरना........

व्यक्ति—इन्हें फ़ौरन मकान के अन्दर पहुँचाइए। पट्टी-वट्टी है घर में?

हेमलता—बीरेन! बीरेन!

रायसाहब—आया जल्दी अन्दर ले चलो।........चेतू सम्हलकर लिटाना। हेम, मेरी ऊपरवाली अलमारी में लोशन है, जल्दी....जल्दी........(बीरेन को पकड़कर आया, चेतू और हेम जाते हैं।) और यह लोचन कौन है?

व्यक्ति—मेरा ही नाम लोचन है।

राय साहब—तुमने बड़ी बहादुरी का काम किया। यह लो दस रुपये और ज़रा दौड़ जाओ, थाने के पास ही डाक्टर रहते हैं।

लोचन—आप रुपये रखें। मैं डाक्टर के पास पहले ही ख़बर भेज आया हूँ। आते ही होंगे।

राय साहब—(कुछ हतप्रभ) तुम....तुम इसी गाँव के हो ?

लोचन—हूँ भी और नहीं भी ।....आप वीरेन बाबू को देखें ।

राय साहब—(संकुचित) हाँ....आँ हाँ........

(जाते हैं । लोचन कमर से बँधे कपड़े को फाड़कर, अपनी बायीं भुजा में बहते हुए घाव पर पट्टी बाँधता है, तस्वीर को सीधा उठाकर रखता और ग़ौर से देखता है । इतने में तेज़ी से हेमलता का प्रवेश ।)

हेमलता—तुम्हारा ही नाम लोचन है ?

लोचन—जी !

हेमलता—तुम्हीं ने बीरेन की जान बचायी ? (प्रसन्न स्वर में) वे होश में आ गये हैं । हम लोग बड़े एहसानमन्द हैं ।

लोचन—(स्पष्ट स्वर में) जान मैंने नहीं बचायी ।

हेमलता—तुम्हारी बाँह पर भी तो चोट है ।

लोचन—जान उन ग़रीब मुमदूरों ने बचायी है जिनसे ज़मीन छीनकर बीरेन बाबू ग्रामोद्धार-समिति का भवन बनवा रहे हैं । जब समिति के क्रांतिकारी नौजवान आपस में लाठी चला रहे थे, तब यही ग़रीब वीरेन बाबू को बचाने के लिए मेरे साथ बढ़े । (व्यंग्यपूर्ण मुस्कान) क्रांति का दीपक बन गया !

हेमलता—(हिचकिचाती हुई) तुम....आप पढ़े लिखे हैं ?

लोचन—पढ़ा-लिखा ? (वही मुस्कान) हाँ, भी और नहीं भी ।........अच्छा चलता हूँ ? हाँ, यह तसवीर आपने बनायी है ?

हेमलता—कोई त्रुटि है क्या ?

लोचन—नहीं ! आपने हमारे नाच की गति को रेखाओं और रंगों में खूब बाँधा है । और........

हेमलता—और ?

लोचन—कोने में खड़े छाया में लपेटे ये व्यक्ति........

हेमलता—कैसे हैं ?

लोचन—(बिना झिझक के) जैसे अपनी ही जंजीरों से बँधे बन्दी !

हेमलता—बन्दी ! क्यों ?

लोचन—(वही मुस्कान) यह फिर बताऊँगा ! (चलते हुए) अच्छा नमस्ते !

(लोचन चला जाता है । हेमलता अचरज में खडी रह जाती है । फिर चित्र उठाकर घर की तरफ़ जाती है ।)

हेमलता—(जाते-जाते मंद स्वर में) बन्दी । अपनी ही जंजीरों में बँधे बन्दी....

(पर्दा गिरता है ।)

तीसरा दृश्य

[वही स्थान। एक हफ़्ते बाद। समय सन्ध्या। नौकर लोग मकान से बगीचे में होकर बाहर की ओर सामान लाते नजर पड़ते हैं। कभी-कभी आया की दबंग आवाज सुन पड़ती है, कभी चेतू की, कभी और लोगों की]

"वह बिस्तरा दो आदमी पकड़ो!"

"सम्हालकर भई।"

"बक्से में चीनी के बर्तन हैं।"

"जल्दी....जल्दी।"

"यह टोकरी दूसरे हाथ में पकड़ो!"

(घर की तरफ से आया का व्यस्त मुद्रा में जल्दी-जल्दी आना। बाहर से चेतू आता है।)

आया—सब सामान लद गया चेतू?

चेतू—हाँ आया! बस, बड़े सरकार का अटेची रहा है। उनके आने पर बन्द होगा।

आया—कहाँ गये सरकार?

चेतू—चौधरी जी के यहाँ विदा लेने। सुना है चौधरी के बचने की उम्मीद नहीं।

आया—जिस गाँव में भतीजा अपने चचा पर वार कर बैठे वहाँ ठहरना धरम नहीं।

चेतू—अभी ज़मानत नहीं मिली बालेश्वर बाबू को।

आया—अब हमें क्या मतलब ? हम तो कलकत्ते पहुँचकर शांति की साँस लेंगे।

चेतू शांति !

आया—तू तो बुद्धू है चेतू। चल कलकत्ते। मौज उड़ायेगा। देखेगा बहार और बजायेगा चैन की बंसी।

चेतू—गाँव छोड़कर ? नौकरी ही करनी है तो अपनी धरती पर करूँगा।

आया—अरे, शहर में नौकरी भी न करेगा तो भी रिक्शा चलाकर डेढ़-दो सौ महीना कमा लेगा।

चेतू—डेढ़-दो सौ ?

आया—हाँ, और रोज़ शाम को सनीमा। होटल में चाय। चकचकाती सड़कें, जगमगाते महल। ठाठ से रहेगा।

चेतू—(विरक्त मुद्रा) खाना किराये का, रहना किराये का और बोली भी किराये की।

आया—जैसी तेरी मर्ज़ी। भुगत यहीं देहात के संकट।

चेतू—लोचन भैया तो कहत........

आया—(झिड़कती हुई) चल, चल, लोचन भैया के बाबा ! अन्दर जाकर देख, बीरेन बाबू तैयार हों तो सहारा देकर लिवा ला। हेम बीबी तो तैयार हैं ?

चेतू—अच्छा।

(अन्दर जाता है।)

आया—(जाते-जाते) देखूँ गाड़ी पर सामान ठीक-ठीक लदा है या नहीं। ये देहाती नौकर.......

(बाहर जाती है। थोड़ी देर में राय साहब और लोचन का बातें करते हुए बाहर से प्रवेश।)

राय साहब—भई लोचन, मुझसे यहाँ नहीं रहा जायेगा। अच्छा हुआ जाते वक़्त तुम आ गये। बीरेन ने तुम्हें देखा नहीं। चलते वक़्त उस दिन के एहसान के लिए........

लोचन—मैंने सोचा था कि आप लोग रुक जायेंगे।

राय साहब—रुकना? आया तो इसी विचार से था कि कलकत्ते के बाद देहात में ही दिन काटूँगा। लेकिन एक महीने में देख लिया कि हम तो इस दुनिया से निर्वासित हो चले। बरसों पहले की दुनिया उजड़ गयी और मैं जिस समाज में बसने आया था, वह ख्वाब हो चला। चौधरी भी शायद उसी ख्वाब के भटके हुए टुकड़े थे। अभी उन्हें देखकर आ रहा हूँ। उम्मीद नहीं बचने की। उस दिन के झगड़े में बालेश्वर ने उनपर लाठी से वार नहीं किया। दिल को भी चकनाचूर कर दिया।

लोचन—बालेश्वर ही गाँव की नयी पीढ़ी नहीं है।

राय साहब—(निराश स्वर) मैं नहीं जानता कि कौन नयी पीढ़ी है। बस इतना देखता हूँ कि रैयत के सुख-दुख में हाथ बटानेवाला ज़मीन्दार, पुरखों के तजुर्बे के रक्षक बुजुर्ग, बेफ़िक्री की हँसी और बड़ों की इज़्ज़त में पले हुए नौजवान—जब ये सब ही नहीं रहे तो गाँव में ठहरकर मैं क्या करूँ! शहर....

लोचन—शहर आपको खींच रहा है राय साहब !

राय साहब—(लाचारी का स्वर) तुम शायद ठीक कहते हो। शहर मुझे खींच रहा है।

लोचन—और आप बेबस खिचे जा रहे हैं।

राय साहब—(पीड़ित मुद्रा) बेबस....बेबस....ऐसा न कहो लोचन, ऐसा न कहो !....हम जा रहे हैं क्योंकि....क्योंकि....

(चेतू का सहारा लिये बीरेन का प्रवेश, साथ में हेम भी है।)

बीरेन -- पापा जी, अब आप ही की देरी है।

राय साहब—(मानो मुक्ति मिली हो) कौन ? बीरेन, हेम ! तैयार हो गये तुम लोग ? तो मैं भी अपना अटेची ले आता हूँ। चेतू मेरे साथ तो चल !

(घर की तरफ़ प्रस्थान। साथ में चेतू)

लोचन—(हेमलता से) नमस्ते !

हेमलता—कौन ?....अच्छा आप ? बीरेन, यही हैं लोचन जिन्होंने उस रोज़ तुम्हें बचाया था।

बीरेन—अच्छा !....उस दिन तो तुम्हें देखा नहीं था, लेकिन फिर भी (ग़ौर से देखते हुए) तुम पहचाने-से लगते हो।

लोचन—(मुस्कराते हुए) कोशिश कीजिए। शायद पहचान लें।

बीरेन—(सोचता हुआ) तुम...वह....वह....नहीं नहीं। वह तो ऊँची जात का, ऊँचे कुल का आदमी था।

हेमलता—कौन ?

बीरेन—मेरा कालेज का साथी एल. एन. परमार।

लोचन—(मुस्कराहट) एल. एस. परमार। ...लोचन सिंह परमार।

बीरेन—(चौंककर) ऐं! परमार....परमार!!

लोचन—(अविचलित स्वर में) हाँ मैं परमार ही हूँ बीरेन।

हेमलता—(विस्मित) बीरेन यह तुम्हारे कालिज के साथी हैं ?

बीरेन—(लोचन का हाथ पकड़कर) यक़ीन नहीं होता परमार, कि तुम्हीं हो इस देहाती वेश में, सुमहरों के बीच। कालेज छोड़कर तो तुम ऐसे गायब हुए थे कि........

लोचन—(किंचित हँसी) एक दिन मैंने तुम लोगों को छोड़ा था और आज (रुककर) आज. तुम जा रहे हो।

बीरेन—परमार, मैं जा रहा हूँ चूँकि मैं अपने आदर्श को खंडित होते नहीं देख सकता।

लोचन—आदर्श ? कौन-सा वह आदर्श है जिसे गाँव खंडित कर देगा ?

बीरेन—क्रांति का आदर्श परमार। मैं भूल गया था कि देहात की मध्ययुगीन ऊसर भूमि अभी क्रांति के लिए तैयार

नहीं है। उसके लिए ज़रूरत है शहर और कारख़ानों की सजग और चेतनाशील भूमि की।........

लोचन—(तीव्र दृष्टि) बीरेन, तुम भाग रहे हो।

बीरेन—मैं लाठियों की मार से नहीं डरता लोचन।

लोचन—तुम भाग रहे हो लाठियों के डर से नहीं, बल्कि उन गुट-बन्दियों, अंधविश्वास और झगड़े-फ़साद की दल-दल के डर से, जिसे तुम एक छलांग में पार कर जाना चाहते थे। (गम्भीर चुनौती पूर्ण स्वर में) तुम पीठ दिखा रहे हो, बीरेन!

बीरेन—(हठात् विचलित) पीठ दिखा रहा हूँ....नहीं.... यह ग़लत है।...हम जा रहे हैं, क्योंकि....क्योंकि....

(आया का तेज़ी से प्रवेश)

आया—हेम बीबी! बीरेन बाबू!! अरे आप लोगों को चलना नहीं है क्या? सारा सामान रवाना भी हो गया। कहीं गाड़ी छूट गयी तो.......कहाँ हैं बड़े सरकार? आप लोग भी ग़ज़ब करते हैं।—

(राय साहब का प्रवेश, साथ में चेतू अटेची लिये हुए)

राय साहब—यह आ गया मैं। चलो भई, आया। बीरेन, तुम चेतू का सहारा लेकर आगे बढ़ो, पहले तुम्हें बैठना है।

बीरेन—मैं चलता हूँ परमार? फिर कभी........

लोचन—फिर कभी (किंचित हँसी) फिर कभी!........

(आया अटेची लेती है, चेतू का सहारा लिये हुए बीरेन बाहर जाता है। पीछे-पीछे आया)

राय साहब—अच्छा भाई लोचन, हम भी चलते हैं।....
मुमकिन है तुम्हारा कहना सही हो!

लोचन—काश मैं आपको रोक पाता!—

राय साहब—हेम, तुम्हारी तसवीर उधर कोने में रखी रह गयी।

हेमलता—अभी लायी पापा, आप चलिए।

राय साहब—अच्छा!

(चलते हैं।)

लोचन—आप भी जा रही हैं हेमलता जी।

हेमलता—मजबूर हूँ।

लोचन—मैं जानता हूँ। वीरेन का मोह।

हेमलता—मैं वीरेन को यहाँ रख सकती थी लेकिन........

लोचन—लेकिन....?

हेमलता—(सत्य की खोज से अभिभूत वाणी) लेकिन एक बात है जिसे न पापा समझते हैं न वीरेन। पर मैं कुछ-कुछ समझ रही हूँ। पापा गाँव को लौटे प्रतिष्ठा और अवकाश में सराबोर होने। वीरेन ने देहात की क्रांति की योजना का टीला बनाना चाहा और मैं...मैं गाँव की मोहक झाँकी में कल्पना का महल बनाने को ललक पड़ी।

लोचन—महल मिटने को बनते हैं, हेम जी।

हेमलता—यह मैं जानती हूँ, लेकिन हम तीनों यह न समझ सके कि हमारी जड़ें कट चुकी हैं, हम गाँव के लिए बिराने हो चुके हैं।...(आविष्ट स्वर) आप इस दुविधा, इस उलझन, इस पीड़ा के शिकार नहीं हुए हैं? एक तरफ़ गाँव और दूसरी तरफ़ नागरिक शिक्षा-दीक्षा और सभ्यता की मज़बूत जकड़। उफ़, कैसी भयानक है यह खाई जिसने हमारे तन, हमारे मन व्यक्तित्व को दो टूक कर दिया है? बताइए कैसे यह दुविधा मिट सकती है? कैसे हम धरती की गंध, धरती के स्पर्श को पा सकते हैं? बताइए।....बताइए!

आया—(नेपथ्य में) हेम बीबी, हेम बीबी जल्दी आओ देरी हो रही है

लोचन—आपके प्रश्न का उत्तर मेरे पास है, लेकिन आप तो जा रही हैं।

हेमलता—जाना ही है। आप मेरे लिए पहेली ही बने रहेंगे!....वह तस्वीर आपके लिए छोड़े जा रही हूँ। नमस्ते।

(जाती है।)

लोचन—(कुछ देर बाद आप ही आप धीरे-धीरे) पहेली... (तस्वीर उठाता है।) और ये बन्दी! (तस्वीर की ओर एक टक देखता है) मैं जानता हूँ—(गहरी साँस)...मैं जानता हूँ कि कौन-सी ज़ंजीरें हैं जो इन्हें बन्द किये हैं। (नेपथ्य में ताँगे के चलने की आवाज़) जा रहे हैं वे लोग!....और मैं बता भी न पाया! कैसे बताऊँ?....कैसे बताऊँ कि यह कुदाली और ये

मेहनत-कश हाथ, यही वे तिलिस्म है जिससे मैं धरती के भेद पाता हूँ। ये मेरी आज़ाद दुनिया के संदेश-वाहक हैं, यही वह वाणी है जो मुझे ग़रीबी के लोक में अपनापन देती है।.... (रुककर) तुम लोग जा रहे हो। बचकर भाग रहे हो। लेकिन मैं ?....क्या मैं अकेला हूँ ? (विश्वासपूर्ण स्वर) अकेला ही सही, लेकिन बन्दी तो नहीं।

(इस बीच में चेतू आकर खड़ा-खड़ा लोचन की स्वागत-वार्ता को सुनने लगता है।)

चेतू—लोचन भैया।

लोचन—कौन ?

चेतू—लोचन भैया, आप तो अपने-आप ही बातें करते हैं।

लोचन—चेतराम !...मैं भूल गया था।

चेतू—क्या भूल गये थे भैया ?

लोचन—कि मैं अकेला नहीं हूँ।

चेतू—अकेले ?

लोचन—हाँ और यह भी भूल गया था कि हमारी दुनिया में बेकार बातें करने का समय नहीं है।

चेतू—काम तो बहुत है ही भैया। अब वह ज़मीन वापस मिली है तो...

लोचन—चलो, चेतराम तलहटीवाली जमीन पर खुदाई शुरू करें, आज ही।

चेतू—जी बाँस के झुरमुट भी तो लगायेंगे।

लोचन—हाँ और बाँध भी बाँधेंगे।

चेतू—अगली बरखा तक खेत तैयार करेंगे।

लोचन—(उल्लासपूर्ण वाणी) चलो हम रोज़ साँझ को अपने पसीने के दर्पण में कभी न मिटनेवाली झाँकी देखेंगे। चलो चेतराम!

(कन्धे पर कुदाली और बगल में चेतराम को लेकर प्रस्थान करता है। नेपथ्य में वाद्य-संगीत जो ओजस्विनी लय में परिवर्तित हो जाता है।)

केसर का सौरभ

श्री रामकुमार वर्मा

पात्र

कवि	विजयसेन
झेलम	सुवीर
कश्यप	महीपत
नील	महाराज यशोवर्द्धन
इरावती	मन्त्री

जयगुप्त

केसर का सौरभ

[नेपथ्य में दूर से आता हुआ संगीत। कोई गा रहा है। साथ ही झेलम की कल-कल ध्वनि सुनाई पड़ती है।]

कवि : (कुछ लय के अनंतर)

केसर सौरभ समेट कर,
लेकर साँस समीर।
एक बार फिर से जागो,
फिर से जागो काश्मीर।
फिर से जागो....

कश्मीर क्या फिर से नहीं जाग सकता? महर्षि कश्यप की भूमि काश्मीर! इसका अतीत गौरव कितना महान है! पर्वत के रूप में अपनी भुजाएँ उठाकर इसने विश्व के समक्ष कितनी बार अपने पराक्रम की घोषणा की है। अपने शस्त्रबल से भी इसने रणक्षेत्र को तीर्थक्षेत्र बनाया है। हमारे देश के मस्तक पर रखा हुआ यह मुकुट न जाने कितने विजय-रत्नों से प्रभापूर्ण है।

इसके गौरव की कथा कितनी प्रेरणादायक होगी, कौन जानता है। किन्तु वह कथा कहनेवाला कौन है? (रुककर कल-कल ध्वनि सुनकर) यह झेलम नदी। कल-कल करती हुई सिन्धु से मिलने जा रही है। इसके तटों पर कितने नगर बसकर उजड़ गये होंगे। उजड़े हुए नगरों पर कितने नवीन

नगर बसे होंगे। क्यों झेलम! तुम जानती हो उन नगरों की संख्या? उन नगरों का वैभव! यदि तुम्हारे पास वाणी होती तो मैं विजय-पर्व के कितने महाकाव्य लिखता। तुम कल-कल करती हुई वहीं जा रही हो। यदि तुम्हारे पास वाणी नहीं है तो तुम मेरी कवि-वाणी ले लो और इस महान भूमि की यशोगाथा दुहरा दो। झेलम! तुम्हारी लहरें भावनाओं की पंक्तियाँ बन जायें, और कल-कल नाद वाणी का रूप धारण कर ले। महाभागे झेलम, क्या मेरी अभिलाषा की प्रतिध्वनि में तुम मेरी कवि-वाणी का उपहार स्वीकार करोगी? बोलो झेलम, झेलम बोलो न। मैं अपनी कवि-वाणी की प्रतिध्वनि तुम्हें सौंपता हूँ।

(एक क्षण तक प्रखर कल-कल ध्वनि)

झेलम—(नारी-कंठ) कवि को प्रणाम करती हूँ।

कवि—(प्रसन्नतातिरेक में) धन्य हो देवि! तुम बोल उठीं! मेरी प्रार्थना में कितना आग्रह था! तुम अपने को नहीं रोक सकीं! ओह! तुम कितनी उदार हो! मेरी श्रद्धा स्वीकार करो देवि। सृष्टि के प्रारम्भ से ही तुम भूभाग पर प्रवाहित हो रही हो। इस भूमि का समस्त इतिहास तुम्हारी लहरों पर प्रतिबिम्बित हुआ है। क्या यह प्रतिबिम्ब शब्दों का रूप ले सकता है? सम्पूर्ण देश की इच्छा है कि तुम्हारी वाणी में इस भूभाग का इतिहास गूँज उठे।

झेलम—कवि, क्या इस इतिहास को सुनने का साहस देशवासियों में है?

कवि—देवि, साहस ही नहीं साहस की अग्नि भी है। सामान्य अग्नि बुझ सकती है, किन्तु साहस की अग्नि प्राण-वायु से और भी अधिक प्रज्ज्वलित होती है। मैं ऐसे ही स्थल चुनना चाहता हूँ, जिनसे साहस की अग्नि; शिखाओं का रूप ग्रहण कर सके।

झेलम—तब मैं तुम्हें दिव्य-दृष्टि भी प्रदान करती हूँ कवि। और सृष्टि के आरम्भ से ही मैं इस भूमि के इतिहास, जो मैंने भगवान शंकर के मुख से सुना है, का उद्घाटन करती हूँ। देखो—इस ओर देखो—यह प्रलय-वृष्टि हो रही है। यह करकापात और ज्वाला-मुखियों का विस्फोट देखो।

(प्रलय-वृष्टि और ज्वालामुखी के विस्फोट का प्रचंड नाद)

समस्त पृथ्वी जल से आप्लावित हो रही है। सर्पों की भाँति लहरें अपना फन उठाकर आकाश को डस रही हैं और आकाश काला पड़ गया है। देखो—यह बिजली की कड़क (बिजली की कड़क)।

कवि—ओफ! भयानक है देवि।

झेलम—बहुत भयानक है? किन्तु अधिक भयानक दृश्य नहीं दिखलाऊँगी। (कुछ क्षण रुककर) यह प्रलय-जल अब उतरने लगा है। (जल के बहने की ध्वनि) यह पर्वत-शृंग निकल आया। ये अनेक शृंग निकले। जल बहुत नीचे बह कर चला जा रहा है। किन्तु इस भूमि में अभी तक जल भरा हुआ है, क्योंकि चारों ओर पर्वत की श्रेणियाँ हैं और जल के निकलने का कोई मार्ग नहीं है।

कवि—सचमुच देवि! ये शृंग बहुत ऊँचे हैं। पर्वत-शृंगों के बीच जल इस प्रकार शान्त है जैसे माता की गोद में शिशु सो रहा है।

झेलम—(मुस्कराकर) तुम कवि हो आगन्तुक। तो सुनो, अनेक वर्षों तक यह जल सोता रहा क्योंकि निकलने का कोई मार्ग नहीं था। अचानक भूकम्प हुआ। पृथ्वी के गर्भ से अग्नि की ज्वालाएँ प्रगट हो गयी (भूकम्प की भयानक ध्वनि) पर्वत खंड-खंड हो गये—और जिसे तुमने सोता हुआ शिशु कहा वह जल घुटनों के बल चलकर माता की गोद से बाहर हो गया।

कवि—हाँ देवि! सचमुच कितने स्थानों से जल बाहर हो रहा है।

(जल निकलने की ध्वनि)

झेलम—अब यह भूमि जलरहित हो गयी। किन्तु अनेक स्थानों पर दल-दल और गीली चट्टानें रह गयीं। कुछ वर्षों पश्चात् पुष्कर क्षेत्र से महर्षि कश्यप यहाँ आये।

कवि—यही महर्षि कश्यप हैं देवि? कितना तेजोमय शरीर है इनका! नेत्रों से कैसी ज्योति निकल रही है! ज्ञात होता है, वे अग्नि के साक्षात् अवतार हैं।

झेलम—हाँ, अग्नि के अवतार! अग्नि के तेज से ही तो वह श्यामांग बन गये हैं। उन्होंने अग्नि से भस्मीभूत चट्टानें देखी। अग्नि ही रुद्र है, अग्नि की शक्ति ही सती है, इस कारण उन्होंने इस भूभाग का नाम सतीभूमि रखा।

कवि—अनेक वर्षों का इतिहास आपको स्मरण है देवि। क्या पहिले इस भूमि का नाम सतीभूमि था देवि ?

झेलम—अनेक वर्षो तक यह भूमि सतीभूमि ही कहलाती रही, फिर उन्होंने यहाँ और तपस्या की, और भगवान शंकर को प्रसन्न किया।

कवि—भगवान शंकर प्रकट हो गये। देवाधिदेव शंकर को प्रणाम।

झेलम—महर्षि कश्यप ने भगवान शंकर से प्रार्थना की कि इस सतीभूमि को अनेकानेक पुष्पलताओं से आच्छादित कर दें, और यहाँ का शेष जल एक नदी के द्वारा बाहर निकाल दें।

कवि—फिर क्या हुआ देवि ?

झेलम—भगवान शंकर ने अपने त्रिशूल से वितस्ति पर्यन्त, अर्थात् बालिश्त भर पृथ्वी खोदी और एक जल की धारा निकल पड़ी। वह जल की धारा मैं ही हूँ।

कवि—वह जल की धारा तुम्हीं हो देवि ?

झेलम—हाँ कवि। वितस्ति पर्यन्त भूमि से निकलने के कारण मेरा नाम वितस्ता है। मैं भगवान शंकर की पुत्री हूँ। उन्हीं की कृपा से मैं यह पूर्व-इतिहास जान सकी हूँ!

कवि—धन्य हो देवि! अभी तक मैं समझता था कि स्वामी कार्तिकेय और गणेश यह दो ही शंकर के पुत्र हैं—तुम पुत्री हो, यह ज्ञात नहीं था।

झेलम—मैं भगवान् शंकर के त्रिशूल से खोदी हुई वितस्ति पर्यन्त भूमि से उत्पन्न होने के कारण ही उनकी पुत्री हूँ। कालान्तर में उस जलकोश को झील मान कर मुझे झेलम नाम दे दिया गया।

कवि—भगवति वितस्ते। आज आपके नाम का रहस्य ज्ञात हुआ।

झेलम—कविवर, मैंने भगवान शंकर की आज्ञा से इस भूमि के स्थान के जल को समेटा, फिर चारों ओर भ्रमण करते हुए, यहाँ के जल-समूहों को एकत्र कर, यह स्थान निवास करने योग्य बना दिया।

कवि– आप धन्य हैं देवि। साथ ही भगवान शंकर के वरदान से इस स्थान पर नाना प्रकार के पुष्प और पेड़ उत्पन्न हो गये। केसर के पुष्प तो विशेष रूप से मोहक हैं।

झेलम—तुम्हारी कविता भी केसर की भाँति होगी।

कवि—देवी तुम्हारी कृपा। फिर क्या हुआ?

झेलम—इसके उपरान्त महर्षि कश्यप ने अनेक ग्रामों का निर्माण किया। आर्य और नाग जातियों को बसाया। अनेक यज्ञ किये, और अपने पुत्र नील को यहाँ का सम्राट घोषित किया।—सुनो—उनकी वाणी—

कश्यप—भूमौ च जायते सर्वं, भूमौ सर्वं विनश्यति।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां, भूमिरेव येरायणम॥

सब कुछ इस भूमि पर ही उत्पन्न होता है, और भूमि में ही विलीन होता है। भूमि ही सब प्राणियों की प्रतिष्ठा और भूमि ही सबका परम आश्रय है। इसलिए वत्स नील! तुम इस सतीभूमि का पोषण करो। मैं आज समस्त जनवासियों के समक्ष तुम्हारा अभिषेक करूँगा। तुम यहाँ के सम्राट होकर अपनी सम्राज्ञी के साथ....

नील—(बीच में ही) सम्राज्ञी के साथ? मैं समझ नहीं सका पिताजी!

कश्यप—हाँ, सम्राज्ञी के साथ! भूमि की सेवा में सम्राज्ञी का सहयोग आवश्यक है। और सम्राज्ञी के लिये मैंने यज्ञशाला में एक अत्यन्त सुन्दरी बाला भी निश्चित कर दी है। यज्ञ की श्वेत भस्म से मैंने उसके केश-कलाप चिन्हित कर दिये हैं, जैसे दुग्धपान करते हुए सर्पों के मुख पर दुग्ध के छींटे पड़े हों। जानते हो उस सुन्दरी बाला को?

नील—नहीं, पिताजी!

कश्यप—हँसी की ध्वनि की भाँति मधुरभाषिणी इरावती!

नील—(चौंकर) इरावती?

कश्यप—(हँसकर) तुम चौंक पड़े! जिसके नेत्रांचल मन्द पवन से हिलते हुए कमल-कोष को भी लज्जित करते हैं।

नील—पिताजी, इरावती नाग-कन्या है, हम आर्य हैं। यह संयोग असम्भव है।

कश्यप—हवन-कुंड में अग्नि की भुजाओं ने साक्षी दी है, नील! इसे कौन असम्भव कर सकता है। इरावती, कौन है, यह तुम नहीं जानते। तीनों लोकों में भूलोक श्रेष्ठ है। भूलोक में उत्तर दिशा पवित्र है। उत्तर में हिमालय महान है और उस हिमालय में सती-भूमि, जो मुझ कश्यप के कारण काश्मीर के नाम से प्रसिद्ध हो रही है। उसी काश्मीर की नाग-जाति की सर्व-श्रेष्ठ सुन्दरी इरावती! तुम काश्मीर के सम्राट होगे और इरावती काश्मीर की सम्राज्ञी।

नील—तब मैं अपना अभिषेक नहीं होने दूंगा पिताजी!

कश्यप—इरावती के कारण?

नील—हाँ, पिताजी! आप किसी नाग-जाति के पुरुष का ही अभिषेक करें और इरावती को सम्राज्ञी बना दें। मैं सम्राट नहीं बनूंगा।

कश्यप—वत्स नील! यह जनता में प्रचारित हो गया है कि तुम इस भू-भाग के सम्राट होगे और इरावती सम्राज्ञी। यदि तुमने इरावती को स्वीकार नहीं किया, तो नाग-जाति विद्रोह कर उठेगी और अनेक ग्राम नष्ट हो जायेंगे।

नील—और यदि इरावती को स्वीकार करने में अनेक ग्राम नष्ट-भ्रष्ट हो गये, तब क्या होगा पिताजी?

कश्यप—इरावती को स्वीकार करने में ग्रामों के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने का भय है?

नील—हाँ, पिताजी, नाग-कन्याएँ चंचल होती हैं। वे विलासिनी होती हैं। वे अपना प्रणयोपहार अनेक सौंदर्य-प्रेमियों को सहज ही दे देती हैं। यदि किसी नाग-जाति के भाग्यशाली व्यक्ति पर इरावती की कृपा हो गयी तो?

कश्यप—(तीव्रता से) सावधान नील! यज्ञ से पवित्र हुई इरावती का अपमान न हो।

नील—पिताजी, अपमान नहीं करूँगा, किन्तु आप राजनीति के व्यवस्थापक हैं। नारी के हृदय को किसी भी नीति के बन्धन में कसना कठिन है।

कश्यप—नील! कुलीन नारी के पास आत्मसम्मान और मर्यादा का जो बन्धन है, वह भगवान शंकर के त्रिशूल से भी नहीं काटा जा सकता है। कुलीन नारी शक्ति है, उसके पास वज्र है, जिससे बड़े-बडे नगाधिराज भी चूर-चूर हो जाते हैं।

नील—किन्तु पिताजी! नाग-कन्याओं के पास आत्म-सम्मान और मर्यादा तो होती नहीं। परिणाम यह होगा कि किसी भी सौंदर्य-प्रेमी शत्रु से मुझे युद्ध करना पड़ेगा। एक युद्ध नहीं, अनेक युद्ध पिताजी, और युद्ध की अग्नि से राज्य की रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये यदि मुझे इरावती को ग्रहण करना है तो मैं राजसिंहासन को अस्वीकार करता हूँ। और यदि आप मुझे राजसिंहासन प्रदान करेंगे तो मैं इरावती को अस्वीकार करूँगा।

कश्यप—तुम मूर्ख हो नील! मैंने इरावती का संस्कार किया है। तुम नवयुवक हो, इसलिये शास्त्र की मर्यादा और

मन्त्रों का प्रभाव नहीं जानते। नाग-कन्या होने के कारण यदि इरावती का अन्तःकरण इन्द्रियों से अधिशासित है तो योग-शक्ति से उसकी सुषुम्णा में कुंडलिनी का जागरण है। उसके सहस्र दल कमल में जो नाद है, वह संसार के समस्त कार्यों से मधुर है; उसकी कुंडलिनी में जो कलात्मक गति है वह संसार की समस्त कलाओं से श्रेष्ठ है।

नील—तो पिताजी, योग-शक्ति में पारंगत इरावती किसी आश्रम की शोभा हो सकती है, सिंहासन की नहीं।

कश्यप—अपनी हठवादिता से मेरे क्रोध को उग्र बनाने का अवसर न दो नील! यदि यज्ञ-भस्म से अभिषिक्त इरावती का निरादर हुआ तो तुम इस भूमि से सदैव के लिये निर्वासित होगे और यहाँ से छः योजन दूर बालुकर्णत्र में राक्षसों और पिशाचों के साथ निवास करोगे।

नील—क्रोध न कीजिए पिताजी! इतना क्रोध है तो मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर लूँगा। किन्तु मेरी भी एक प्रार्थना सुनें। सम्राज्ञी होने से पूर्व क्या इरावती से कुछ क्षणों के लिए भेंट हो सकती है?

कश्यप—अवश्य! वह यहीं यज्ञशाला में भगवती स्वाहा के समक्ष नतजानु होगी। (पुकार कर) जयगुप्त!

जयगुप्त—(नेपथ्य से) उपस्थित हूँ प्रभु! (जयगुप्त का प्रवेश)

कश्यप—जयगुप्त! भगवती इरावती का यहाँ आगमन हो!

जयगुप्त—प्रभु की जैसी आज्ञा। (प्रस्थान)

कश्यप—नील! जिस प्रकार एक बार केंचुल छोड़ने के बाद सर्प उस केंचुल को धारण नहीं करता, उसी भाँति पवित्र यज्ञ-वेदी पर मन्त्रों से यदि एक बार अपवित्र संस्कार छोड़ दिये गये, तो वे फिर से धारण नहीं किये जा सकते। मैंने इरावती के सभी कुसंस्कार दूर कर दिये। अब वह मेघ के स्वाती-जल की भाँति पवित्र है, जिससे तुम्हारे हृदय में प्रेम की मुक्ता का निर्माण होना चाहिये।

नील—मैं प्रयत्न करूँगा पिताजी!

कश्यप—तुम नाग-जाति के आचरणों पर ध्यान मत दो। शुद्ध प्रेम पर ध्यान दो। शुद्ध प्रेम से ही भगवती पार्वती ने शिव का अर्धांग प्राप्त किया। यह मत समझो कि पार्वती ने अपनी तपस्या में विल्व-पत्र खाकर और वायु पीकर ही भगवान शिव को प्राप्त किया है। विल्व-पत्र तो शंकर का नन्दी नित्य खाता है, और जटाजूट में स्थित सर्प नित्य वायु पीता है। किन्तु वे शंकर का अर्धांग प्राप्त नहीं कर सके। प्रेम की महत्ता सर्वोपरि है, उसी दृष्टि से तुम्हें इरावती को देखना चाहिए।

(जयगुप्त का प्रवेश)

जयगुप्त—प्रभु, महादेवी इरावती द्वार पर हैं।

कश्यप—वे भीतर प्रवेश करें।

जयगुप्त—जैसी आज्ञा। (प्रस्थान)

कश्यप—नील, महादेवी इरावती का स्वागत करो। वे आकाश की भाँति गम्भीर, वायु की भाँति मनन-शील, अग्नि की भाँति पवित्र, जल के समान तरल व धरती की भाँति सहनशील हैं। वे यज्ञ पूजा कन्या हैं।

ध्वनि—(नूपुर के शब्द। इरावती का प्रवेश)

इरावती—महर्षि को प्रणाम! सम्राट की जय!

कश्यप—स्वस्ति!

नील—तुम्हारी समृद्धि हो!

कश्यप—इरावती, सम्राट नील तुमसे कुछ क्षण वार्तालाप करेंगे। मैं यज्ञ की दक्षिणा लेकर कुछ देर में आऊँगा। बाहर मेरी प्रतीक्षा हो रही होगी। मैं चलूँगा।

ध्वनि—(प्रस्थान, पादुकाओं का शब्द। कुछ क्षण मौन, नील और इरावती परस्पर अनिमेष देखते हैं।)

नील—देवि, स्वागत! आसन ग्रहण करें।

इरावती—सम्राट, आचार्य का कथन है कि सब कुछ इस भूमि पर ही उत्पन्न होता है, और भूमि में ही विलीन होता है। भूमि ही सबकी प्रतिष्ठा और भूमि ही सबका परम आश्रय है। मैं भूमि पर हूँ। मेरी स्थिति यहीं ठीक है, प्रभु।

नील—तुम यज्ञ-वेदी पर पवित्र होकर, राजसिंहासन के योग्य बनी हो देवि!

इरावती—यज्ञ की वेदी और राजसिंहासन में कोई अन्तर नहीं है सम्राट्। दोनों का शृंगार पवित्र अग्नि से ही होता है।

जिस प्रकार यज्ञ-वेदी आहुतियों से प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार राजसिंहासन भी स्वार्थ और तृष्णा की आहुतियों से सुसज्जित होता है।

नील—तुम तो नाग-कन्या हो देवि!

इरावती—प्रभु आर्य हैं।

नील—सुनता हूँ कि नाग-कन्याओं में कला अधिक होती है, ज्ञान उतना नहीं।

इरावती—प्रभु, सूर्य की किरण काले बादलों को भी उज्जवल बनाती है और काले बादलों में ही सूर्य की किरण कलात्मक अधिक हो जाती है।

नील—तुम जितनी सुन्दर हो, उतनी ही सुन्दर बातें भी करती हो देवि।

इरावती—यदि मेरी बातें सुन्दर हैं, तो सुन्दरता को प्रतिबिम्बित करने के लिए निर्मल दर्पण चाहिये, जो आपके हृदय में है।

नील—इस कथन में भी कला है। इरावती! महर्षि की आज्ञानुसार तुम सम्राज्ञी बनोगी और इस प्रकार मेरी पत्नी। ऐसी महर्षि की इच्छा है।

इरावती—क्या सम्राट् की इच्छा नहीं है?

नील—(अटकते हुए) मेरी—मेरी—हाँ मेरी भी कुछ ऐसी ही इच्छा है।

इरावती—ऐसी ही इच्छा का अर्थ समझाने का कष्ट करें प्रभु !

नील—उसका—उसका कोई विशेष अर्थ नहीं है। मैं सोचता था—अर्थात् मैं सोचता था कि तुम जैसी कुशल नाग-कन्या की कला मैं सम्हाल सकूँगा या नहीं !

इरावती—गजचर्म पर ही बैठकर भगवान शंकर अपने जटाजूट में द्वितीया के चन्द्र की कला सम्हाले हुए हैं। प्रभु तो राजसिंहासन पर आसीन होंगे, और फिर मुझमें कलाएँ ही कितनी हैं ?

नील—जब तुम्हारी वाणी में इतनी कला है देवि, तब तुम्हारे जीवन में कितनी कला न होगी। तुम नृत्य कर सकती हो देवि ?

इरावती—यदि प्रभु की परिक्रमा नृत्य है, तो अवश्य कर सकती हूँ।

नील—शास्त्रों का कथन है कि नक्षत्रों का नृत्य ही सर्वोत्तम नृत्य है। उस नृत्य की गति देखने की इच्छा है देवि !

इरावती—प्रभु सम्राट् हैं। अपनी शक्ति से नक्षत्रों को पृथ्वी पर ही ला सकते हैं !

नील—और यदि मैं तुम्हें ही एक नक्षत्र मान लूँ ?

इरावती—अतिशयोक्ति को भी मैं प्रभु की कृपा मान लूँ ?

नील—किन्तु मैं नृत्य देखना चाहता हूँ देवि !

इरावती—सहचरी नाग-कन्याओं को बुलाने की आज्ञा है ?

नील—मैं केवल तुम्हारा नृत्य देखना चाहता हूँ।

इरावती—मेरा नृत्य, प्रभु की इच्छाओं के नृत्य के समान नहीं है।

नील—फिर भी !

इरावती—प्रभु ! मकर राशि में जब सूर्य की संक्रान्ति होती है, तब उस क्षण अन्तरिक्ष की शक्तियाँ इस प्रकार आन्दोलित हो उठती हैं। उसे मेरे नूपुरों में देखें।

(कुछ क्षण नृत्य में नूपुरों का नाद)

इरावती—महर्षि इसी ओर आ रहे हैं।

नील—किन्तु मैं नृत्य से तृप्त नहीं हुआ देवि !

इरावती—इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं हुआ करतीं प्रभु ! नृत्य साधना है और इच्छा मन का विलास ! विलास और साधना के छोरों को मिलाने का कष्ट न करें, दोनों की गति स्वाभाविक ही रहे।

(कश्यप का प्रवेश)

कश्यप—हाँ, तुम दोनों की गति स्वाभाविक रहे। तभी सम्राट् और सम्राज्ञी बन तुम लोग राज्य पर शासन कर सकोगे। नील, तुम इरावती से मिलकर प्रसन्न हुए ?

नील—महर्षि, ऊख स्वयं ही इतना मीठा होता है कि उसे किसी फल की आवश्यकता नहीं होती।

इरावती—जिस प्रकार ज्योति के सम्पर्क में आकर दीप भी ज्योतित हो जाता है, उसी प्रकार सम्राट के प्रश्नों ने मेरे उत्तरों को ज्योतित कर दिया। मुझे जाने की आज्ञा है?

नील—हाँ, देवि तुम्हारी प्रसन्नता पूर्ण हो।

कश्यप—स्वस्तिमय बनो।

(नूपुर-नाद से प्रस्थान)

कश्पय—इरावती की समता इस समय कोई भी आर्य-कन्या नहीं कर सकती। तुम्हारी समस्त शंकाएं निर्मूल हुईं। (नील कुछ नहीं बोलता) बोलो....बोलो न!

नील—(गम्भीरता से) नहीं निर्मूल हुई पिता जी!

कश्यप—नहीं?

नील—इरावती बहुत कलाकुशल है, अच्छा नृत्य कर सकती है। वार्तालाप मनोविज्ञान की गहराई से करती है, किन्तु वह सम्राज्ञी नहीं हो सकती!

कश्यप—मैं कारण जानना चाहता हूँ नील!

नील—सम्राज्ञी नर्तकी नहीं हो सकती।

कश्यप—(तीव्रता से) वह नर्तकी नहीं, कृपक-कन्या है। नृत्यकला से परिचित होना नर्तकी बनना नहीं है। तुमने उसे नृत्य करने के लिए कहा था?

नील—हाँ पिताजी, मैंने कहा था!

कश्यप—और तब यदि वह नृत्य न करती तो, तुम मुझसे

कहते कि अवज्ञा करनेवाली सम्राज्ञी नहीं हो सकती! तुम अपने विचारों का सत्य लांछित करते हो नील! उसमें गुणों को ग्रहण करने की सहजता नहीं है। तुम छिद्रान्वेषण में प्रवीण हो, दूसरों के गुणों को दोष में ही देखते हो।

नील—आप मुझे राजनीतिज्ञ बनाना चाहते हैं पिताजी?

कश्यप—ऐसा राजनीतिज्ञ नहीं जो असत्य को सत्य व सत्य को असत्य माने। इरावती ज्योति-कलश है। वह जीवन की समस्त दिशाओं में ज्योति-जागरण का सन्देश देने की शक्ति रखती है।

(नेपथ्य में शब्द होता है। हमें अन्न चाहिए, हम भूखे हैं प्रभो! हमें अन्न चाहिये।)

कश्यप—यह कैसा शब्द हो रहा है?

नील—भूखे लोगों का आर्त्तनाद ज्ञात होता है।

कश्यप—यहाँ की जनता को तो पुष्कल अन्न दान में मिला है। (पुकार कर) जयगुप्त!

जयगुप्त—(उपस्थित होकर) आज्ञा प्रभो!

कश्यप—यह कैसा कोलाहल है?

जयगुप्त—प्रभु, कुछ ग्रामवासी हैं, वे अनेक दिनों से भूखे हैं। उनके साथ महादेवी इरावती आपकी सेवा में आ रही हैं।

कश्यप—उनका स्वागत है!

जयगुप्त—जैसी आज्ञा। (प्रस्थान)

नील—पिताजी ग्रामवासी यदि यहाँ आवेंगे तो यह कक्ष अशुद्ध हो जावेगा।

कश्यप—नील, तुम अभी पुराने संस्कारों से मुक्त नहीं हुए। सम्राट का सिंहासन जनता के विश्वास का ही प्रतीक है। जनता के मुख से राजनीति गंगा-जल की भाँति पवित्र बनी रहती है। जनता के प्रेम के शब्द ही राजसिंहासन में मणियों की भाँति विजड़ित होते हैं।

(इरावती का प्रवेश)

इरावती—प्रभु, विल्वबन के कुछ निवासी यहा एकत्र हैं। अनेक वृद्ध अपने पुत्रों के कन्धों पर चढ़कर यहा आपसे अपना कष्ट निवेदन करने के लिए आये हैं। सबों ने चार दिनों से अन्न नहीं खाया है। वृक्ष के पत्ते वे कितने दिन खा सकते हैं?

कश्यप—वास्तव में उन्हें बड़ा कष्ट हुआ।

नील—उनसे कहो देवि, कि वे श्रम करें और पारिश्रमिक से अन्न प्राप्त करें।

इरावती—किन्तु वे अत्यन्त दुर्बल हैं, अभी श्रम के योग्य नहीं हैं।

नील—तो उन्हें अपने पूर्वकाल के पापों का प्रायश्चित तो करना ही होगा।

कश्यप—नील, तुम्हारे सम्राट रहते हुए।

नील—तो मैं क्या कर सकता हूँ पिताजी ? अन्नकोष्ठों में तो इतना अन्न भी नहीं होगा। फिर इस नगर की प्रजा के लिए भी तो अन्न की कठिनाई होगी।

इरावती—मैं एक निवेदन करना चाहती हूँ।

कश्यप—अवश्य !

इरावती—विल्वबनों के समीप कोई कृषि-भूमि नहीं है। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं इन बनवासियों को प्रोत्साहित करूँ और स्वयं हल लेकर भूमि को कृषि-भूमि बनाने में सहायता करूँ।

कश्यप—साधु, साधु इरावती ! तुमने सम्राज्ञी के योग्य ही कथन किया !

इरावती—सम्राट की आज्ञा है ?

नील—जैसी इच्छा !

इरावती—तो मुझे आज्ञा दीजिए।

(प्रस्थान)

कश्यप—तुम इस इरावती को नर्तकी कहोगे नील ? 'सम्राज्ञी नर्तकी नहीं हो सकती।' अब कहो—'सम्राज्ञी कृषि का कार्य नहीं कर सकती।' मानवता की संवेदना समझो नील ! दूसरे के कष्टों में समभागी बनना मानव का सहज धर्म है। फिर तुम तो सम्राट घोषित किये गये हो ! वनवासियों का कष्ट सुनकर तुम्हारे नेत्रों में अश्रु नहीं आये ? इरावती

के कहने से पूर्व ही तुम्हें उन बनवासियों के लिए कृषि-कार्य करने को उद्यत होना चाहिए था।

नील—(धीमे स्वर में) तो क्या कृषक ही सम्राट है ?

कश्यप— सम्राट कृषक की छाया है। तुम सम्राट बनने योग्य नहीं हो नील ! मैं तुम्हें अपदस्थ करूँगा।

नील—ऐसा न कीजिये पिताजी, ऐसा न कीजिये ! मैं क्षमा चाहता हूँ। आगे से कृषकों को ही अपना आराध्य मानूँगा।

कश्यप—और इरावती को ?

नील—उन्हें भी स्वीकार करूँगा।

कश्यप—इरावती तुमसे सभी गुणों में महान है, इसलिए उसके समक्ष अपनी हीनता स्वीकार करने में तुम्हें लज्जा आती है। तुम्हें सम्भवतः उससे ईर्ष्या भी होगी, इसीलिए तुम उसे कभी नाग-कन्या, कभी नर्तकी कहकर अपनी हीनता पर आवरण डालना चाहते हो। क्यों ?

(नील चुप रहता है)

तुम्हारे पास कोई उत्तर नहीं है। तुम जाओ और कृषि का कार्य करती हुई उस इरावती के सहायक बनो।

नील—जैसी आज्ञा !

कश्यप—मैं तुम दोनों के सेवा-कार्य का निरीक्षण करूँगा। चलो मेरे साथ !

(प्रस्थान। पादुका की ध्वनि)

झेलम—और इस प्रकार महर्षि कश्यप ने काश्मीर की बहुत-सी भूमि कृषि-योग्य बनायी।

कवि-- देवी! नील और इरावती का विवाह हुआ?

झेलम—मैं यह जानती थी कि कवि यह प्रश्न अवश्य पूछेगा। हाँ, कवि! विवाह हुआ, परन्तु नील की अपेक्षा इरावती ने ही सच्चे अर्थों में प्रजा का पालन किया और उन्होंने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया, अनेक अग्रहार ब्राह्मणों को दान दिये। अनेक वर्षों तक प्रजा का जय-जयकार इरावती के सम्मान में गूँजता रहा!

कवि—उसके पश्चात् क्या हुआ देवि?

झेलम—उनके बाद अनेक राजाओं ने राज्य किया। शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीतती चली गयीं। एक महान नरेश हुआ, जिसका नाम था यशोवर्द्धन। उसके न्याय और धर्म की कथाएँ जन-जन के घरों में उत्साह और प्रशंसा के साथ कही और सुनी जाती थीं। उसके प्रजापालन और न्याय के अनेक दृश्यों में से केवल एक दृश्य दिखलाना चाहती हूँ—

(विजयसेन सिसकियाँ ले रहा है। सुवीर नामक व्यक्ति आता है।)

सुवीर—पथिक तुम इतने दुखी क्यों हो? तुम्हें किस बात का कष्ट है?

(विजयसेन कुछ नहीं बोलता। एक गहरी सिसकी लेता है।)

सुवीर—तुम—तुम प्रवासी ज्ञात होते हो। क्योंकि महाराज यशोवर्द्धन के राज्य में कोई व्यक्ति दुखी नहीं है।

विजयसेन—(सँभलकर) हाँ—मैं प्रवासी हूँ। इसी कुएँ में कूदकर आत्महत्या—आत्महत्या करूँगा! (सिसकी)

सुवीर—आत्महत्या! आत्महत्या जघन्य पाप है, प्रवासी! धैर्य रखो और अपनी विपत्ति की बात कहो! सम्भव है, मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ! मेरा नाम सुवीर है। इसी ग्राम में रहता हूँ। तुम्हारा रुदन मुझसे नहीं देखा गया।

विजयसेन—बड़ी कृपा है आपकी। पर—पर मेरी सहायता कौन कर सकेगा?

सुवीर—ईश्वर पर विश्वास रखिए! महाराज यशोवर्द्धन पर विश्वास रखिए! अपना परिचय दीजिए!

विजयसेन—मेरा परिचय ही क्या!—मेरा नाम विजयसेन है, श्रीमान्! कुंडार ग्राम का व्यापारी हूँ। कान्यकुब्ज देश से धन कमाकर चला था, यहाँ खो दिया!

सुवीर—खो दिया? किस तरह खो दिया?

विजयसेन—अपनी ही मूर्खता से—और क्या कहूँ! छः महीने बाद लौटा हूँ। मेरी पत्नी मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। सोचता था, व्यापार में कमाई हुई पाँच सौ स्वर्ण-मुद्रायें अपनी पत्नी को दूँगा! वह कितनी प्रसन्न हो जाती। किन्तु स्वर्ण-मुद्रायें—

सुवीर—क्या हुई? किसी ने छीन लीं? किन्तु महाराज यशोवर्द्धन के राज्य में कोई चोर नहीं है।

विजयसेन—चोर नहीं हैं, यह मैं भी जानता हूँ, किन्तु मेरी मूर्खता—मेरी असावधानी !

सुवीर—मूर्खता ? असावधानी ? मैं कुछ समझा नहीं, प्रवासी ।

विजयसेन—चलते-चलते मैं थक गया था, श्रीमान् ! सोचा—इस कुएँ के शीतल जल से अपनी प्यास बुझाऊँ । मुद्राओं की गठरी कुएँ की जगत पर रख दी—मेरी बुद्धि की बलिहारी—अरे, वह गठरी किसी दूसरी जगह रख देता—नीचे ही डाल देता—पर—पर अपनी मूर्खता से वह गठरी मैंने कुएँ की जगत पर ही रखी ! पानी खींचते समय मेरे ही शरीर—मेरे ही शरीर के झटके से वह गठरी कुएँ में गिर पड़ी । मैं देखता रहा और मेरे कठिन परिश्रम से कमाई हुई वे स्वर्ण-मुद्राएँ जैसे मेरी मूर्खता पर अट्टहास करते हुए पानी में विलीन हो गईं ?

सुवीर—बड़ा बुरा हुआ यह तो !

विजयसेन—अब मैं क्या मुँह लेकर घर जाऊँगा ? जब मेरी पत्नी मंगल-आरती उतारकर प्रणाम करेगी, आशा भरे नेत्रों से मेरे मुख की ओर देखेगी तब मैं किस मुख से कहूँगा कि तुम्हें राजरानी बनाने के लिए ही तुम्हारी स्वर्ण-मुद्राएँ कुएँ में फेंक आया हूँ ! —(सिसकी) धिक्कार है मुझे ! —मैं इस कुएँ के पास आया ही क्यों—कुछ देर पानी न मिलता तो मर तो न जाता ! —किन्तु अब अपने दुर्भाग्य को इस कुएँ की गहराई से नापूँ और दुष्ट संसार से कह दूँ—देख ! मेरा दुर्भाग्य तेरे कुएँ से

भी गहरा है । मेरी स्वर्ण-मुद्राओं को छीननेवाले ! मेरे प्राणों को भी छीन ले ! यह कुआँ मेरे प्राणों को लेकर और भी शीतल हो जायगा ! —(सिसकियाँ)

सुवीर—(धैर्य देते हुए) शान्ति....शान्ति....प्रवासी ! अधीर मत बनो ! भावावेश में अपने-आपको दोष मत दो। जान-बूझकर तो तुमने मुद्राएँ कुएँ में फेंकीं नहीं। तुम्हारा अपराध क्या है ! तुम्हारी पत्नी तुमसे कुछ नहीं कहेगी ! इसे तो एक दैवी घटना ही समझना चाहिए। ईश्वर पर विश्वास रख कर तुम फिर व्यापार करो। सहस्रों मुद्राएँ आ जायेंगी। तुम्हारे प्राणों के आगे मुद्राओं का मूल्य ही क्या है ! क्या मूल्य है !

(महीपत नामक व्यक्ति का प्रवेश)

महीपत—मुद्राओं के विषय में कैसा विवाद ?

सुवीर—(देखकर) अरे, तुम हो महीपत ? अच्छे आये, ये बेचारे विजयसेन हैं। कुंडार के नागरिक। व्यापार से धन कमाकर लाये और दुर्भाग्य देखो कि इस कुएँ से पानी खींचते समय अपना संतुलन खो बैठे। स्वर्ण-मुद्राओं की गठरी कुएँ में गिर गयी !

महीपत—इस कुएँ में गिर गयी ?

सुवीर—हाँ ! ये बड़ी देर से आँसू बहा रहे हैं ?

महीपत—सचमुच ! दैव ने इनके साथ बड़ा अन्याय किया।

सुवीर—किन्तु अब इन्हें धैर्य रखना चाहिए। इतने गहरे कुएँ से वे स्वर्ण-मुद्राएँ निकल नहीं सकतीं।

महीपत—(गर्व से) निकल सकती हैं।

विजयसेन—(उद्विग्नता से) निकल सकती हैं?—निकल सकती हैं? तो निकाल दीजिए, महात्मन्—मैं जीवन भर आपका ऋणी रहूँगा—निकाल दीजिए। जैसे भी हो निकाल दीजिए। मैं किसी तरह अपनी पत्नी को मुँह दिखला सकूँ! आप कितने उपकारी हैं—ओह आप कितने उपकारी हैं!....

महीपत—उपकारी तो मैं नहीं हूँ, किन्तु कुएँ में उतरकर मैं आपकी गठरी अवश्य निकाल सकता हूँ। पूरे एक घण्टे तक जल के भीतर रह सकता हूँ।

सुवीर—हाँ, यह तो मैं भी कह सकता हूँ, जल के भीतर ये बहुत देर तक रह सकते हैं। ये हमारे ग्राम के निवासी हैं। इनपर हमें गर्व है। बड़े जीवट के व्यक्ति हैं। ये आपकी गठरी पाताल से भी निकाल सकते हैं।

विजयसेन—तब तो क्या कहना है—अब तो मेरी गठरी निकल ही आएगी। धन्य हैं—बड़े भाग्य से इनके दर्शन हुए।

महीपत—मैं इसे भाग्य नहीं मानता, महाशय! अवसर मान सकता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि उस गठरी में कितनी स्वर्ण-मुद्राएँ थीं?

विजयसेन—पाँच सौ स्वर्ण-मुद्राएँ।

महीपत—पाँच सौ? तब तो वह गठरी अवश्य ही निकाल दूँगा।

विजयसेन—(विह्वलता से) मुझपर बड़ी कृपा होगी—कृपा होगी। मैं जी जाऊँगा। महात्मन्! मैं आपको लाख-लाख आशीर्वाद दूँगा। आपका उपकार—आपका उपकार, मैं जन्म भर नहीं भूलूँगा। मुझपर कृपा कर दीजिए—कृपा कर दीजिए, महाशय! मेरी मुद्राएँ निकाल दीजिए।

महीपत—मुद्राएं तो निकाल दूँगा पर मुद्राएँ निकालने का क्या पारिश्रमिक होगा मेरा?

विजयसेन—आशीर्वाद दूँगा। बहुत-बहुत आशीर्वाद दूँगा, नहीं तो जो आप उचित समझें, जितना आप उचित समझें।

महीपत—चार सौ मुद्राएँ मेरी होंगी, सौ मुद्राएं आपकी।

विजयसेन—सौ मुद्राएँ मेरी?

महीपत—सौ से भी कम चाहते हैं आप? किन्तु आप संकोच न करें। मैं आपको सौ मुद्राएँ ही दूँगा। यह अवश्य है कि ये सौ मुद्राएँ आपको बिना कष्ट के ही मिल रही हैं, अन्यथा आपका सारा धन तो कूप-तीर्थ को समर्पित ही हो गया है।

सुवीर—दुर्घटना तो ऐसी ही हुई है, किन्तु अपना पारिश्रमिक कुछ कम ले लो, महीपत!

महीपत—कम कैसे ले लूँ सुवीर! इतने गहरे कुएँ में उतरना क्या सरल काम है? यह तो मेरा साहस है कि असंभव को भी संभव बना दूँ, भय को भी भयभीत कर दूँ, फिर अपने

प्राणों को संकट में डालने का पारिश्रमिक चार सौ मुद्राएँ भी न होगा ?

विजयसेन—उससे भी अधिक हो सकता है श्रीमन् ! किन्तु यदि कुएँ से स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त होती हैं तो परिश्रम से उपार्जन करने के कारण मुझे उनका अधिकारी होना चाहिए । किन्तु आप कृपापूर्वक मुद्राएँ निकाल रहे हैं, मुझपर उपकार कर रहे हैं तो उपकार करने का जो पारिश्रमिक आप उचित समझें वह ले लीजिए ।

महीपत—देखिए, न उचित-अनुचित की बात है, न उपकार की बात है । बात है कुएँ से मुद्रायें निकालने की और उसका पारिश्रमिक है, चार सौ मुद्राएँ ।

विजयसेन—किन्तु पाँच सौ में से मुझे केवल सौ मुद्राएँ मिलेंगी, यह किस न्याय से ?

महीपत—देखिए, न्याय तो महाराज यशोवद्र्धन करते हैं । आपको सौ मुद्राएँ मिल जायँ इसके लिए मैं अपने प्राणों को संकट में डालता हूँ ।

विजयसेन—आपका विवेक यही उचित समझता है ?

महीपत—सम्पूर्ण रूप से । आपपर अकारण ही दया कर रहा हूँ । यदि आपको स्वीकार नहीं है तो जाने दीजिए, मेरे पास भी बहुत काम है । मैं चला (चलने को उद्यत होता है ।)

विजयसेन—अच्छा सुनिए ।

महीपत—देखिए, सुनने की बात नहीं है, मेरे पारिश्रमिक की बात है। सोच लीजिए। मैं यहीं पास हूँ। आवश्यकता हो, तो बुला लीजिएगा। मैं जाता हूँ। (प्रस्थान)

सुवीर—क्या सोच रहे हो प्रवासी, महीपत जा रहा है। उसकी बात स्वीकार कर लेना ही बुद्धिमानी है, नहीं तो जो सौ स्वर्ण-मुद्राएँ आपको मिल सकती हैं, वे भी आपके हाथ से चली जायेंगी।

विजयसेन—पर क्या यह अन्याय नहीं है कि पारिश्रमिक के नाम से स्वयं चार सौ लेकर मुझे केवल सौ मुद्राएँ दी जायँ और कहा जाय कि मुझपर अकारण दया की गयी।

सुवीर—आपकी बात तो ठीक है, किन्तु आप यहाँ कितनी देर ठहर सकते हैं? एक दिन? दो दिन? फिर तो आप चले ही जायेंगे। आपके जाने के अनंतर महीपत कुएँ में से गठरी निकाल कर सारा धन ले सकता है। आपके हाथ तो कुछ भी नहीं आयेगा।

विजयसेन—इस अन्याय की अपेक्षा मैं आत्म-हत्या करना उचित समझता हूँ।

सुवीर—आत्म-हत्या करना कायरता है। आप सौ स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर फिर व्यापार कर सकते हैं या सौ मुद्राएँ अपनी पत्नी को देकर कह सकते हैं कि व्यापार में इतना ही लाभ हुआ। आपकी पत्नी कुछ नहीं कहेंगी।

विजयसेन—(सोचकर) हाँ, पत्नी बेचारी क्या कहेगी। वह क्या जाने कि संसार में धन लेकर दया की जाती है। ठीक है, जैसा आप उचित समझें।

सुवीर—तो फिर मैं महीपत को बुलाता हूँ। (पुकार कर) महीपत—महीपत आओ! (विजयसेन से) देखो प्रवासी, नीति कहती है कि जाते हुए धन में से जितना बच सके, बचा लेना चाहिए।

विजयसेन—परिस्थिति का परिहास तो यही है।

(महीपत का प्रवेश)

महीपत—आपने क्या निर्णय किया?

विजयसेन–किसी का एक हाथ काट दिया जाय और कहा जाय कि मैंने तुम्हारे हाथ को परिश्रम से बचा लिया। कुछ वैसी ही बात है।

महीपत—देखिए, मैं आपके वेद-पुराण की बातों को नहीं समझना चाहता। मैं तो एक उत्तर चाहता हूँ—'हाँ' या 'नहीं।'

विजयसेन—तो जैसा आप उचित समझें, वैसा ही करें।

महीपत—मैंने तो पहले ही कहा कि चार सौ मुद्राएँ मेरी और सौ मुद्राएँ आपकी। स्वीकार है?

सुवीर—स्वीकार कर लो प्रवासी!

विजयसेन—आप लोग उचित ही कहेंगे, उचित ही करेंगे।

महीपत – तब ठीक है, मैं इस रस्सी के सहारे कुएँ में उतरता हूँ।

(रस्सी से सरकने और पानी में डूबने का शब्द)

सुवीर—प्रवासी यह मैं मानता हूँ कि कुछ अन्याय हो रहा है, किन्तु इसे सहने के अतिरिक्त और कौन-सा मार्ग है।

विजयसेन—कोई नही। सुनते हैं कि महाराज यशोवद्र्धन बहुत अच्छा न्याय करते हैं, किन्तु उनका न्याय मुझे कहाँ मिलेगा।

सुवीर—तुम सच कहते हो, प्रवासी! उनकी बुद्धि इतनी विलक्षण है कि कठिन से कठिन समस्या का समाधान वे एक क्षण भर में कर सकते हैं, पर इस समय वे कहाँ होंगे, यह कौन कह सकता है। राजधानी में नहीं हैं, नहीं तो तुम वहां जा सकते थे।

विजयसेन—जब मेरे भाग्य में न्याय नहीं है, तभी वे राजधानी में नहीं हैं।

(कुएँ में से महीपत की आवाज आती है)

महीपत—(कुएँ से) आपकी गठरी पीले कपड़े की है?

विजयसेन—(सुवीर से) कह दीजिये कि पीले कपड़े की है!

सुवीर—(ज़ोर से) हाँ, पीले कपड़े की है।

महीपत—(कुएँ से) मैंने पा ली है। मैं उसे लेकर ऊपर आ रहा हूँ।

(नेपथ्य से दो घोड़ों के दौड़ने की आवाज़ आती है। घोड़े तेज़ दौड़ते हुए आ रहे हैं।)

सुवीर—(देखकर) कुछ आखेटक आ रहे हैं इस ओर। घोड़े बहुत तीव्र गति से दौड़ रहे हैं—(सहसा) अरे, महाराज यशोवद्र्धन हैं! साथ में उनके मंत्री हैं।

विजयसेन—(उमंग से) महाराज यशोवद्र्धन हैं? धन्य भाग, धन्य भाग! महाराज यहाँ रुक सकते हैं? रुक जाते तो मेरा न्याय हो जाता!

सुवीर—महाराज की जय बोलकर हाथ उठा दो प्रवासी!

विजयसेन—अच्छी बात है। (ज़ोर से) महाराज की जय! महाराज की जय! मेरा न्याय कीजिये! मेरा न्याय कीजिए!

(घोड़े रुक जाते हैं)

विजयसेन—महाराज की जय! महाराज; मैं न्याय चाहता हूँ।

(महाराज यशोवद्र्धन और मंत्री घोड़े से उतरते हैं।)

यशोवद्र्धन—(मंत्री से) मंत्री! नगर की सीमा पर अन्याय? पूछो, कैसा अभियोग है?

मंत्री—(विजयसेन से) तुम कौन हो नागरिक? तुम्हारा क्या अभियोग है? किसने तुम्हारे प्रति अन्याय किया है?

विजयसेन—महाराज की जय ! आपने दास की प्रार्थना सुन ली ! महाराज ! यह दास कुंडार नगर का व्यापार कर पाँच सौ स्वर्ण-मुद्राओं के साथ अपने स्थान को लौट रहा था। इस कुएँ पर पानी पीने आया। दुर्भाग्य से पानी खींचते समय दास की मुद्राओं की गठरी इस कुएँ में गिर गयी।

यशोवर्द्धन- तुम असावधान हो श्रेष्ठि !

विजयसेन—महाराज ! असावधान ही नहीं, अभागा भी हूँ। इस दुःख से आत्महत्या—

यशोवर्द्धन—आत्महत्या ! महान् कायरता !

विजयसेन—अपने दुःख के आवेग को रोकने में मैं असमर्थ था, महाराज ! ये सुवीर हैं, इसी ग्राम के निवासी, उन्होंने मुझे धैर्य दिया।

सुवीर—महाराज की जय हो !

मंत्री—तुम सुवीर हो। अपने नाम के अनुरूप तुमने प्राणी की रक्षा की ! साधु !

सुवीर—महाराज ! राजा का धर्म ही प्रजा को साहसी बनाता है।

विजयसेन—महाराज ! जब सुवीर मुझसे धैर्य रखने को कह रहे थे तभी महीपत नाम के एक सज्जन आये ! उन्होंने कहा कि मैं स्वर्ण-मुद्राओं की गठरी कुएँ से निकाल दूं तो मुझे क्या मिलेगा ?

यशोवर्द्धन—उपकार करने में भी पारिश्रमिक! (मन्द हँसी) अच्छा, तुमने कितना पारिश्रमिक कहा?

विजयसेन—मैंने तो यही कहा कि मैं लाख-लाख आशीर्वाद दूँगा।

यशोवर्द्धन—आशीर्वाद मात्र (हँसकर) प्रवासी! आशीर्वाद का मूल्य सज्जन ही समझते हैं। उन्होंने कुछ पारिश्रमिक माँगा?

विजयसेन—हाँ, महाराज। उन्होंने कहा कि पाँच सौ स्वर्णमुद्राओं में से वे चार सौ मुद्राएँ लेंगे और मुझे केवल सौ मुद्राएँ देंगे।

यशोवर्द्धन—तुम्हें केवल सौ मुद्राएँ? तुमने ठीक तरह से सुना?

विजयसेन—हाँ, महाराज! मेरे बहुत आग्रह करने पर भी उन्होंने अपना पारिश्रमिक कम नहीं किया। ये सुवीर जी साक्षी हैं।

यशोवर्द्धन—सुवीर, श्रेष्ठि का कथन सत्य है?

सुवीर—हाँ, महाराज! परिस्थिति ऐसी ही थी कि महीपत की बात माननी पड़ी नहीं तो श्रेष्ठि को सौ मुद्राएँ भी नहीं मिलतीं।

यशोवर्द्धन—यह अन्याय है। पारिश्रमिक मूल धन के पंचमांश से अधिक नहीं होना चाहिए, नागरिक।

विजयसेन—महाराज धन्य हैं। इसीलिए मैंने न्याय की भिक्षा माँगी।

यशोवर्द्धन—महीपत कहाँ है?

सुवीर—वे कुएँ से गठरी लेकर बाहर आना ही चाहते हैं।

यशोवर्द्धन—अच्छा, वे अभी बाहर नहीं आये?

सुवीर—महाराज! घटना अभी थोड़ी देर पहले ही घटित हुई है।

मंत्री—तब तो महीपत को खोजने का श्रम न करना होगा।

(महीपत का प्रवेश)

महीपत—(जोर से साँस लेता हुआ) इतना गहरा कुआँ!...ओह....ऊपर चढ़ने में दम फूल आया....गठरी....यह गठरी ले आया....(सामने देखकर) अरे....आप....आप.... महाराज!...महाराज की जय हो!....मंत्री....महाराज की जय हो! महाराज....आप....यहाँ।

मंत्री—यह महीपत आ गया....

यशोवर्द्धन—तुम्हारा नाम महीपत है?

महीपत—हाँ, महाराज!

यशोवर्द्धन—तुमने कुएँ से स्वर्ण-मुद्राएँ निकालीं?

महीपत—हाँ, महाराज। यह गठरी है।

यशोवद्र्धन—साधुवाद ! (मंत्री से) मंत्री ! स्वर्ण-मुद्राएँ अपने अधिकार में लो ।

मंत्री—जो आज्ञा । (गठरी लेते हैं)

महीपत—इस नगर-सीमा पर वेत्र ग्राम का निवासी हूँ ।

यशोवद्र्धन—तुमने बहुत अच्छा किया जो श्रेष्ठि विजयसेन की स्वर्ण-मुद्राओं की गठरी कुएँ से निकाली ! तुमने उसके लिए पारिश्रमिक माँगा ?

महीपत—महाराज मैंने कोई अपराध नहीं किया । इतने गहरे कुएँ में उतरने के लिए अपार श्रम करना था ! उस श्रम के लिए ही पारिश्रमिक मैंने माँगा ।

यशोवद्र्धन—पारिश्रमिक माँगना अनुचित नहीं था । तुमने कितना पारिश्रमिक माँगा ?

महीपत—चार सौ स्वर्ण-मुद्राएँ ।

यशोवद्र्धन—गठरी में कितनी मुद्राएँ हैं ?

महीपत—पाँच सौ मुद्राएँ महाराज !

यशोवद्र्धन—(आश्चर्य सहित) तो पाँच सौ में से चार सौ स्वर्ण-मुद्राएँ ! क्या तुम यह उचित समझते हो ? क्या यह पारिश्रमिक का परिहास नहीं है ?

महीपत—महाराज । मेरे प्राणों के संकट को देखते हुए चार सौ स्वर्ण-मुद्राएँ अधिक नहीं कही जा सकतीं ।

यशोवर्द्धन—ठीक है, किन्तु प्राणों को संकट मे डालने के लिए किसीने तुम्हें बाध्य किया ?

महीपत—बाध्य तो नहीं किया महाराज। किन्तु मैंने चाहा कि यदि मैं अपने प्राणों को संकट में डाल दूँ तो श्रेष्ठि महाशय को सौ स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त हो जायँगी।

यशोवर्द्धन—तो तुमने (तुमने पर ज़ोर) चाहा ? बड़े उपकारी ज्ञात होते हो।

महीपत—महाराज। मैंने उपकार की बात नहीं कही। मैं तो अपनी बात कह कर चला गया था। श्रेष्ठि महाशय ने मुझे बुलाकर मेरी बात स्वीकार की। सुवीर इसके साक्षी हैं।

यशोवर्द्धन—सुवीर। महीपत का कथन सत्य है ?

सुवीर—महाराज सत्य ही समझना चाहिए। यद्यपि श्रेष्ठि महाशय ने स्पष्ट रूप से स्वीकार न कर महीपत के विवेक पर ही बात छोड़ दी थी।

यशोवर्द्धन—तो महीपत। तुमने श्रेष्ठि महाशय के संकट से लाभ उठाया। पाँच सौ में से चार सौ स्वर्ण-मुद्राएं ले लेना तस्करता का कार्य है, उपकार का नहीं।

महीपत—महाराज। मैं अत्यन्त रंक हूँ। अर्थाभाव से पीड़ित हूँ। दूसरों की सहायता करके मैं अपनी सहायता करता हूँ।

यशोवद्र्धन—नहीं, इसे इस तरह कहना चाहिए कि मैं अपनी सहायता करके दूसरों की सहायता करता हूँ। मैं समझता हूँ कि पारिश्रमिक के रूप में चार सौ मुद्राएँ अधिक हैं।

महीपत—महाराज! अधिक और कम की बात नहीं थी। श्रेष्ठि महाराज ने जब यह राशि स्वीकार कर ली तभी मैं कुएँ में उतरा। समझौता होने पर ही मैंने यह कार्य किया।

यशोवद्र्धन—श्रेष्ठि विजयसेन। क्या तुमने ऐसा समझौता कर लिया था?

विजयसेन—महाराज। पहले तो मैंने आशीर्वाद देने की बात कही, फिर कहा कि जो आप उचित समझते हैं—जितना आप उचित समझते हैं, उतना ले लें।

यशोवद्र्धन—नागरिक सुवीर। क्या यह बात श्रेष्ठि विजयसेन ने कही थी?

सुवीर—हाँ, महाराज। श्रेष्ठि विजयसेन ने यही बात कही थी, इसीलिए मैंने पहले ही सेवा में निवेदन किया था कि श्रेष्ठि ने यह बात महीपत के विवेक पर छोड़ दी थी कि जितना आप उचित धन समझते हैं, उतना ले लें।

यशोवद्र्धन—तो श्रेष्ठि ने महीपत से उचित धन लेने की बात कही थी। उचित धन। अब यह निर्णय होना चाहिए कि क्या पाँच सौ में से चार सौ स्वर्ण मुद्राएँ उचित हैं?

महीपत—महाराज। मेरे प्राणों के सङ्कट की दृष्टि से—

यशोवर्द्धन—(झुँझलाकर) बार-बार प्राणों के संकट की दुहाई क्यों देते हो ? लोग तो अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूसरों की सहायता करते हैं। (विजयसेन से) विजयसेन, महीपत चार सौ स्वर्ण-मुद्राओं का पारिश्रमिक चाहते हैं, इसका एक कारण दृष्टिगत होता है—

विजयसेन—महाराज !

यशोवर्द्धन—क्योंकि महीपत बहुत रङ्क हैं, अर्थाभाव से पीड़ित हैं।

महीपत—हाँ, महाराज। मेरा परिवार दुःखी है, रङ्क है, निर्धन है।

यशोवर्द्धन—मुझे बहुत दुःख है महीपत। तुम्हारी पत्नी है ?

महीपत—हाँ, महाराज।

यशोवर्द्धन—परिवार में अन्य कितने व्यक्ति हैं ?

महीपत—अन्य कोई नहीं है, महाराज। मैं हूँ और मेरी पत्नी है।

यशोवर्द्धन—कोई बच्चे ?

महीपत—कोई नहीं है, महाराज।

यशोवर्द्धन—फिर केवल दो व्यक्ति तो थोड़े परिश्रम से ही सुविधा के साथ रह सकते हैं। कोई व्यवसाय करते हो ?

महीपत—अवकाश नहीं मिलता, महाराज।

यशोवर्द्धन—अवकाश क्यों नहीं मिलता ?

महीपत—पत्नी की सेवा-शुश्रूषा अधिक करनी पड़ती है।

यशोवर्द्धन—(मन्द हास्य के साथ) तो इसे भी एक व्यवसाय ही समझना चाहिए। फिर–फिर उदर-पोषण कैसे होता है ?

महीपत—घर के सामने ही थोड़ी खेती कर लेता हूँ और फिर कुछ श्रेष्ठि की सहायता करने जैसे कुछ काम मिल जाते हैं।

यशोवर्द्धन—इसीलिए तुम्हारा पारिश्रमिक अधिक हुआ करता है। किन्तु तुम्हारे इतने बलिष्ठ होने पर तो रंकता नहीं रहनी चाहिए।

महीपत—महाराज। यों तो रङ्क न रहता किन्तु परिस्थितियों से रङ्क बन जाता हूँ।

यशोवर्द्धन—परिस्थितियों से ? ऐसी कौन-सी परिस्थितियाँ हैं ?

महीपत—महाराज। क्षमा करें, मेरी पत्नी बहुत शृंगार प्रिय है। जो कुछ भी मैं उपार्जित करता हूँ, वह सब उसके शृंगार की सामग्री में व्यय हो जाता है।

यशोवर्द्धन—तुम्हारा भी तो कुछ अधिकार होना चाहिए महीपत। किन्तु संभवतः तुम विवश होगे। उसी विवशता के

कारण तुमने संभवतः चार सौ स्वर्ण-मुद्राएँ श्रेष्ठि से प्राप्त करने की बात सोची जिससे तुम अपनी पत्नी का शृंगार-प्रसाधन समुचित मात्रा में जुटा सको ।

महीपत—महाराज । आप अन्तर्यामी भी हैं ।

यशोवर्द्धन—(मंत्री से) मंत्री । महीपत की पत्नी के लिए अपने कंठ की मुक्तामाला प्रदान करो, जिससे महीपत और उसकी पत्नी अपने को रंक अनुभव न करें ।

महीपत—(उल्लास से) धन्य है, धन्य है, महराज । आप कितने कृपालु और न्यायी हैं । अब चार सौ मुद्राएं—

यशोवर्द्धन—मंत्री । तुमने महीपत की पत्नी के लिए महीपत को मुक्तामाला प्रदान कर दी ?

मंत्री—हाँ, महाराज । प्रदान कर दी । (गले से मुक्ता-माला उतारते हैं ।)

महीपत—आप धन्य हैं, प्रभु । मुझे प्राप्त हो गयी । यह है ।

(मुक्तामाला के हाथ में रखने का शब्द)

यशोवर्द्धन—तो मंत्री । तुमने महीपत की पत्नी को रंकता के कूप से निकाला । महीपत ने कूप से गठरी निकाली, तुमने रंकता के कूप से महीपत की पत्नी निकाली ।

महीपत—(कुछ न समझते हुए) एँ ? हाँ, महाराज ।

यशोवर्द्धन—तो अब मंत्री के भी पारिश्रमिक का निर्णय होना चाहिए।

मंत्री—महाराज की कृपा होगी।

यशोवर्द्धन—महीपत गठरी के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार समझते हैं, इसी न्याय से मंत्री को भी महीपत की पत्नी पर अधिकांश अधिकार होना चातिए, क्योंकि मंत्री ने महीपत की पत्नी को रंकता के कूप से निकाला है।

विजयसेन—धन्य है महाराज, आपकी विलक्षण बुद्धि को।

महीपत -(घबराकर) महाराज। मेरी रक्षा कीजिए। ऐसा निर्णय न कीजिए, महाराज।

यशोवर्द्धन—मेरा निर्णय? यह निर्णय तो तुम्हारा किया हुआ है महीपत, जिस प्रकार तुमने श्रेष्ठि को केवल सौ स्वर्ण मुद्राओं का पात्र समझा, उसी प्रकार तुम भी कुछ समय तक अपनी पत्नी से वार्तालाप कर सकते हो, शेष समय के लिए वह मंत्री के अधिकार में रहेगी। क्यों मंत्री? ठीक है?

मंत्री—महाराज का निर्णय सर्वोपरि है।

विजयसेन - नीर-क्षीर विवेक तो यही है, महाराज!

महीपत—महाराज! यह मुक्तामाला मुझे नहीं चाहिए—मेरी पत्नी को भी नहीं चाहिए! मैं आपकी सेवा में उसे लौटाता हूँ। (माला लौटाता है।) मेरी पत्नी को रंकता के कूप से न निकालिए। उसे मेरे पास ही रहने दीजिए।

यशोवर्द्धन—मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु फिर तुम न्यायपूर्वक श्रेष्ठि में इतनी मुद्राएँ नहीं ले सकते ।

महीपत—महाराज जैसा निर्णय करें ।

यशोवर्द्धन—श्रेष्ठि ने कहा था कि जितना आप उचित समझते हैं उतना ले लें । उचित एक पंचमांश है अर्थात् केवल सौ स्वर्ण-मुद्राएँ ।

महीपत—मुझे स्वीकार है ।

विजयसेन और मंत्री—(सम्मिलित स्वर से) महाराज यशोवर्द्धन के न्याय की जय ! जय ! जय !

झेलम—कवि ! तुमने महाराज यशोवर्द्धन का न्याय देखा ?

कवि—देवि ! मैं तो महाराज की विलक्षण बुद्धि पर मुग्ध हो गया । किस प्रकार अज्ञात रूप से उन्होंने सारी परिस्थिति को समझकर एक क्षण में न्याय कर दिया ! धन्य है !

झेलम—इस प्रकार इस धरती के स्वर्ग में अनेकानेक नरेश सत्य और धर्म की वृद्धि से न्याय करते रहे । शताब्दियाँ बीत गयीं !

कवि—इसके बाद का इतिहास क्या है देवि ?

झेलम—कवि ! आज समय अधिक हो गया । अब अधिक नहीं कहूँगी । किन्तु मध्यकाल में जहाँ जहाँगीर और नूरजहाँ ने इस भूमि को स्वर्ग की संज्ञा दी वहाँ आधुनिक काल में पाकिस्तान ने

इसे अपने अत्याचारी और नृशंस पैरों से कुचला। इसकी कथा भी बहुत मर्मस्पर्शी है। यह कथा कल कहूँगी। तुम इसी स्थान पर कल इसी समय आने का कष्ट करना।

कवि—मैं अवश्य उपस्थित होऊँगा देवि! मैं इस धरती के स्वर्ग की कथा सुनकर धन्य हो गया!

झेलम—पृथ्वी के स्वर्ग की कथा साहस और विजय की कथा है। शताब्दियों के बाद शताब्दियाँ बीत जायेंगी, किन्तु यह स्वर्ग कभी विदेशियों की पराधीनता स्वीकार नहीं करेगा। इसके निवासी भारत-भूमि को ही अपनी भूमि मानेंगे और काश्मीर सदा विजयी रहेगा। इसपर सत्य और धर्म की ध्वजा सदैव ही फहराती रहेगी।....(कुछ रुककर) मैं अब फिर अपने रूप-में लीन होती हूँ।

ध्वनि—(ज़ोर की कलकल ध्वनि)

कवि—धन्य हो देवि झेलम! तुमने धरती के स्वर्ग का भविष्य भी बतला दिया।....इस धरती के स्वर्ग की जय!

पटाक्षेप